भारतीय ज्ञानपरम्परा आधारित

संस्कृति बोधमाला ७

प्रकाशक : विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान, कुरुक्षेत्र

विद्या भारती
अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान
हमारा लक्ष्य
इस प्रकार की राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का विकास करना है जिसके द्वारा ऐसी युवा-पीढ़ी का निर्माण हो सके जो हिन्दुत्वनिष्ठ एवं राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत हो, शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से पूर्ण विकसित हो तथा जो जीवन की वर्तमान चुनौतियों का सामना सफलतापूर्वक कर सके और उसका जीवन ग्रामों वनों, गिरिकन्दराओं एवं झुग्गी-झोपड़ियों में निवास करने वाले दीन-दुःखी अभावग्रस्त अपने बान्धवों को सामाजिक कुरीतियों, शोषण एवं अन्याय से मुक्त कराकर राष्ट्र जीवन को समरस, सुसम्पन्न एवं सुसंस्कृत बनाने के लिए समर्पित हो।

ॐ

मंगलाचरण

सत्य पराक्रम शील निधान, धीर धनुर्धर अति बलवान।
मर्यादा पुरुषोत्तम राम, नमते तुम्हें नरोत्तम राम।।

राष्ट्र गीत - वन्दे मातरम्

प्रस्तुत राष्ट्रगीत भारत के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय (चटर्जी) द्वारा रचित 'आनंदमठ' पुस्तक से उद्धृत है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय यही गीत क्रांतिकारियों का प्रेरणा मंत्र रहा है।

वन्दे मातरम्।
सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्,
शस्य श्यामलां मातरम्। वन्दे मातरम् ॥१॥
शुभ्र-ज्योत्स्नां-पुलकित-यामिनीम्,
फुल्ल-कुसुमित-द्रुमदल-शोभिनीम्,
सुहासिनीं, सुमधुर-भाषिणीम्,
सुखदां, वरदां, मातरम्। वन्दे मातरम् ॥२॥
कोटि-कोटि-कंठ कल-कल-निनाद-कराले,
कोटि-कोटि-भुजैर्धृत-खर-करवाले,
अबला केनो माँ एतो बले,
बहुबल-धारिणीं, नमामि तारिणीम्,
रिपुदल-वारिणीं मातरम्। वन्दे मातरम् ॥३॥
तुमि विद्या तुमि धर्म, तुमि हृदि तुमि मर्म,
त्वं हि प्राणाः शरीरे, बाहुते तुमि मा शक्ति,
हृदये तुमि मा भक्ति,
तोमारई प्रतिमा गड़ि मन्दिरे-मन्दिरे। वन्दे मातरम् ॥४॥
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण-धारिणीम्,
कमला कमल-दल-विहारिणीम्,
वाणी विद्यादायिनी, नमामि त्वाम्
नमामि कमलां अमलां अतुलाम्,
सुजलां सुफलां, मातरम्। वन्दे मातरम् ॥५॥
श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषिताम्,
धरणीं भरिणीं मातरम्। वन्दे मातरम् ॥६॥

भारत माता की जय।

प्रकाशकीय

परमोच्च सत्य का सन्धान, आख्यान और व्यवहार संस्कृति है। आसेतुहिमाचल, इस भूमि पर अपनी सारस्वत साधना से इस सत्य का साक्षात् दर्शन कर हमारे पूर्वज मनीषियों ने ऋषि पद प्राप्त किया। वेद एवं उपनिषद् आदि वाङ्मय के रूप में उन्होंने इसकी अभिव्यक्ति की। इस पृथ्वीतल एवं समस्त ब्रह्माण्ड की प्राकृतिक शक्तियों की देवरूप में मनोरम स्तुति तथा जीवन के गूढ़ रहस्यों का, विविध आख्यान-उपाख्यानों के माध्यम से, तात्त्विक कथन आदि ने इसके स्वरूप को गढ़ा। इनके आधार पर जिन जीवनमूल्यों (दर्शन), जीवन व्यवहार (धर्म) का विकास हुआ उसे भारतीय संस्कृति के नाम से अभिहित किया गया। 'सत्य संकल्प प्रभु' राम, गीता के आख्याता श्रीकृष्ण एवं कण-कण में रमे शिवशंकर 'संस्कृति पुरुष' बने।

सत्य शाश्वत है, कालजयी है, इसलिए उसका प्रवाह चिरन्तन होता है। सत्य को वहन करने वाली संस्कृति की गति कभी मृदु, मंद, मंथर उर्मियों से युक्त होती है तो आवश्यकता होने पर इसमें उत्ताल तरंगें भी उठती हैं। भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध ने इसे विविधावर्णी बनाया। श्रीमद् शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य प्रभृत्ति तत्त्ववेत्ताओं के दार्शनिक सूत्रों के साथ उस तत्त्व के रसरूप (रसो वै सः) के प्रति भक्तिपरक स्तोत्रों ने इसमें माधुर्य का संयोग किया। पुराण साहित्य तो भक्ति का अगाध समुद्र ही है। ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् एवं श्रीमद्भगवद्गीता- इस प्रस्थानत्रयी में श्रीमद्भागवत जुड़कर प्रस्थान चतुष्टय हुआ, जिसने मस्तिक और हृदय-तत्त्वचिन्तन और भक्ति की समन्वित धारा को गति प्रदान की। पूरे इतिहास फलक पर दृष्टिपात करें तो पाएँगे कि लम्बे संघर्षकाल में- प्रारंभ से अन्त तक- इन्हीं ग्रन्थों में ग्रथित तत्त्वदर्शन का युगीन, समकालीन व्याख्यान हमें प्रेरणा देता रहा है।

देवताओं के लिए भी स्पृहणीय भारतभूमि, राष्ट्र का भारतमाता के रूप में चिरंतन दर्शन एक ओर, तो दूसरी ओर 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' कहकर सम्पूर्ण जगती के प्रति अनन्य श्रद्धाभाव, भारतीय संस्कृति का मूल है। 'न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्' (महाभारत), 'सबार ऊपर मानुष सत्य, ता ऊपर किछु नाहीं (चण्डीदास) कहकर मनुष्य मात्र को इस संस्कृति ने अपने केन्द्र में रखा तो जीवमात्र और उससे भी आगे बढ़कर चेतन के साथ जड़ को भी जोड़कर यह संस्कृति अनन्त विस्तार पाती है। छोटे से छोटा (अणोरणीयान्) और बड़े से बड़ा (महतो महीयान्), सब कुछ को यह अपनी परिधि में समाहित कर लेती है। आध्यात्मिकता, सांसारिकता, शाश्वत धर्म, सामयिक कर्त्तव्य, सुरज्ञान, कर्म, भक्ति का समन्वय, पुरुषार्थ चतुष्टय, व्यवहार के स्तर पर आन्तरिक शुचिता और बाह्यशुद्धि आदि विचार इसकी श्रेष्ठता है। इस सबका आख्यान करने वाले रामायण, महाभारत हमारे 'संस्कृति ग्रन्थ' हैं।

संस्कृति का यह प्रवाह अबाध व निरन्तर बना रहे, इसकी आवश्यकता आज बड़ी तीव्रता से अनुभव में आती है। यह नई पीढ़ी तक पहुँचे, नई पीढ़ी को इसका सम्यक, सुष्ठु और सर्वाङ्ग बोध हो, इस उद्देश्य से विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान इस संस्कृति बोधमाला का प्रकाशन कर रहा है। भावीपीढ़ी 'संस्कृति दूत' बनकर मानवता की सेवा कर सकें, दिशा दे सकें तो हम कृतकार्य होंगे।

संस्कृति बोधमाला को तैयार करने के लिए विद्या भारती के अनेक कार्यकर्ताओं ने सब प्रकार का अनवरत परिश्रम किया है, उनके प्रति मैं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। इसमें उपयोग किए गए चित्रों के रचनाकार निश्चय ही हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। जिन महानुभावों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में इसमें सहयोग मिला, उनका विनम्र आभार...

– प्रकाशक

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	**हमारी भारतमाता** चारधाम, पंचकेदार, सप्तबदरी, सप्तपर्वत।	५
२.	**हमारा भारत राष्ट्र** एकात्मतास्तोत्रम्, हमारे राष्ट्रनायक, हमारी समाज व्यवस्था, समाज का स्वरूप : समरसता और दायित्व।	१०
३.	**हमारी भारतीय संस्कृति** संस्कृति व सभ्यता का सम्बन्ध, भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ, संस्कारों की पावन परम्परा।	१६
४.	**हमारी परिवार व्यवस्था** स्वदेशी पर विदेशी आक्रमण, सामाजिक प्रचार माध्यम, मातृभाषा, सद्गुण, सन्तवाणी, गीत।	१९
५.	**हमारी ज्ञान परम्परा** एकात्ममानव दर्शन, श्रीरामचरितमानस प्रसंग, श्रीमद्भगवद्गीता, प्राचीन गुरुकुल शिक्षा, हमार वांग्मय, आध्यात्मिक चेतना।	२४
६.	**हमारी वैज्ञानिक परम्परा** भारतीय शास्त्रों में विज्ञान, खगोल विज्ञान, भारतीय ज्योतिषशास्त्र, भारतीय कालगणना भारतीय विद्याएँ।	३३
७.	**हमारा गौरवशाली अतीत** युग परिचय, वास्तुकला, मराठा साम्राज्य, वन्देमातरम् की गौरवगाथा, हमारे राष्ट्रनायक, प्रेरक बालवीर, हम पर थोपे गये युद्ध।	३८
८.	**हमारी संस्कृति का विश्व संचार** योग, संगीत की भारतीय परम्परा, भारत की विश्व को देन, वैदिक गणित, शून्य का आविष्कार, विश्वव्यापिनी भारतीय संस्कृति।।	४४

---

१. हमारी भारतमाता

गायन्ति देवाः किलगीतकानि धन्यास्तुते भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूय पुरुषाःसुरत्वात्।।

देवगण भी स्वर्ग में गाते यही गुणगान हैं।
स्वर्गसुख और मुक्ति का शुभपंथ हिन्दुस्थान है।
देवताओं से अधिक सौभाग्याशाली हैं सभी
मानव जो पावन भरत-भू की बन सके संतान हैं।

चारधाम

भारत की चार दिशाओं में स्थित चार धाम सनातन काल से राष्ट्र की सांस्कृतिक एकात्मता के प्रतीक हैं। इन चारों धामों की यात्रा हर हिन्दू के मन की अभिलाषा रहती है। ये धाम हैं –

(अ) बदरीनाथ धाम – भारत की उत्तरी सीमा पर उत्तराखण्ड में हिमालय की उत्तुंग चोटियों की गोद में बसे बदरीनाथ धाम में पवित्र अलकनन्दा नदी के दाहिने छोर पर स्थापित प्रमुख मन्दिर में श्री बदरीनारायण (विष्णु भगवान) विराजमान हैं। उल्लेखनीय है कि इस मन्दिर के प्रधान पुजारी भारत के दक्षिणी छोर के केरल प्रान्त के नम्बूदरीपाद वंशी ही होते हैं। शेष समय बर्फ से ढँके रहने से मन्दिर अक्षय तृतीया से दीपावली तक ही खुला रहता है।

गंगोत्री

गंगोत्री, गंगा नदी का उद्गम स्थल है एवं उत्तराखण्ड के चार धाम तीर्थयात्रा में से एक है। नदी के स्रोत को भागीरथी कहा जाता है, और देवप्रयाग के बाद से यह अलकनन्दा में मिलती है, जहाँ से आगे गंगा नाम से जानी जाती है। पवित्र भागीरथी नदी का उद्गम गोमुख पर है जो कि गंगोत्री ग्लेशियर में स्थित है। गंगोत्री से गोमुख तक १९ किलोमीटर लम्बा मार्ग है।

यमुनोत्री

कथा है कि असित मुनि अपनी वृद्धावस्था के कारण कलिन्द पर्वत में स्थित सप्तऋषि कुण्ड में स्नान करने नहीं जा पाए तो उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर माँ यमुना उन्हीं की कुटिया से प्रकट हो गयीं। तभी से इस दैवीय स्थान को यमुनोत्री धाम के नाम से जाना जाता है। यमुना जी भगवान सूर्य की पुत्री व यमराज की बहन हैं। उत्तराखण्ड के चार धाम की तीर्थ यात्रा में यमुनोत्री एक है। यमुना के स्रोत यमुनोत्री का पवित्र गढ़, गढ़वाल के पश्चिम में स्थित मन्दिर है, जो बन्दरपूँछ पर्वत के एक शिखर पर स्थित है। यमुनोत्री में मुख्य आकर्षण देवी यमुना का मन्दिर और जानकीचट्टी (७ कि.मी. दूर) में पवित्र गर्म जल का झरना है।

(आ) जगन्नाथ धाम – भारत की पूर्व दिशा में स्थित समुद्रतटीय राज्य ओडिशा में जगन्नाथपुरी के नाम से विख्यात नगरी में भगवान जगन्नाथ (श्रीकृष्ण), बलभद्र और उनकी बहिन सुभद्रा की, नीम की लकड़ी से निर्मित काष्ठ प्रतिमाएँ हैं। जिस वर्ष आषाढ़ मास अधिक मास के रूप में आता है, पुरानी प्रतिमाओं के स्थान पर नवीन प्रतिमाएँ स्थापित की जाती हैं। यह प्रक्रिया कलेवर परिवर्तन कहलाती है। जगन्नाथधाम की रथयात्रा एक विश्व प्रसिद्ध महोत्सव है।

जगन्नाथ धाम सामाजिक समरसता का अनूठा उदाहरण है – ''जगन्नाथ का भात, पूछे जात न पात, जगत पसारे हाथ'' यहाँ बनने वाले भात का प्रसाद बिना जाति-पाँति का भेदभाव किए सभी श्रद्धालु ग्रहण करते हैं। यहीं पर आद्य शंकराचार्य द्वारा स्थापित गोवर्धन पीठ चार प्रमुख शांकर पीठों में से एक है।

जगन्नाथ रथ यात्रा

पद्मपुराण के अनुसार, भगवान जगन्नाथ की बहन सुभद्रा ने एक बार नगर देखने की इच्छा जताई, तब जगन्नाथ और बलभद्र अपनी लाड़ली बहिन सुभद्रा को रथ पर बैठाकर नगर दिखाने निकल पड़े। इस दौरान वे मौसी के घर (गुंडिचा मंदिर) भी गए। यहाँ वे सात दिन ठहरे। तभी से जगन्नाथ यात्रा की परम्परा चली आ रही है। जिस समय श्रीकृष्ण का स्वधाम गमन हुआ, वह अपना हृदय छोड़ गए। यहाँ की मूर्तियों में साक्षात् रूप में भगवान जगन्नाथ अवस्थित होते हैं, इसलिए उनके पूजन को आज भी भक्त अत्यन्त सौभाग्य मानते हैं।

(इ) द्वारकाधाम – द्वारकाधाम भारतवर्ष के पश्चिमी समुद्र तट पर स्थित है। द्वारकापुरी का निर्माण श्रीकृष्ण द्वारा करवाया गया। यह समुद्र से घिरी होने से बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित थी। यहाँ श्रीकृष्ण द्वारकाधीश के नाम से विख्यात हैं। यह नगरी श्रीकृष्ण के इहलीला संवरण (परमधाम गमन) के पश्चात् जलमग्न हो गई थी। इसके निकट ही बेट द्वारका है। कृष्ण की द्वारका के समुद्र में डूबी होने के प्रमाण अब पुरातात्त्विक और वैज्ञानिक कसौटियों पर सिद्ध हो चुके हैं। इसी स्थान पर समुद्र के १३० फुट नीचे ५६० फुट लम्बी मानव निर्मित दीवार के अवशेष मिले हैं। आद्य शंकराचार्य स्थापित चार पीठों में द्वारका पीठ और प्रसिद्ध सप्तपुरियों में एक होने से भी द्वारका विश्व प्रसिद्ध तीर्थ है।

सुदर्शन सेतु (द्वारका)

श्री बेट द्वारका

श्री बेट द्वारकाधीश मन्दिर में भक्तों की अपार आस्था है। मन्दिर में श्रीकृष्ण की मूल मूर्ति उनकी पत्नी देवी रुक्मिणी द्वारा स्थापित की गई है। श्रीकृष्ण और उनके मित्र सुदामा की इसी स्थान पर भेंट हुई थी।

सामान्यत: लोग द्वारका उस क्षेत्र को समझते हैं जहां गोमती नदी के तट पर भगवान द्वारकाधीशजी का मन्दिर है। कम लोग जानते हैं कि द्वारका को तीन भागों में बाँटा गया है- मूल द्वारका, गोमती द्वारका और बेट द्वारका। मूल द्वारका को सुदामापुरी भी कहा जाता है। यहां सुदामाजी का घर था जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने बनवाया था। गोमती द्वारका वह स्थान है जहाँ से भगवान श्रीकृष्ण राजकाज किया करते थे और बेट द्वारका वह स्थान है जहाँ भगवान का निवासस्थान था। जल से घिरी भूमि, जिसे हम द्वीप कहते हैं, इसे गुजराती में बेट कहा जाता है। अत: द्वारका का वह भाग जो मुख्य भूमि से पृथक् होकर द्वीप में परिवर्तित हो गया, उसे बेट द्वारका कहा जाने लगा।

(ई) रामेश्वरम् धाम – रामेश्वरम् धाम भारत के दक्षिणी प्रान्त तमिलनाडु के रामनाथपुरम् जिले में स्थित है। भगवान श्रीराम द्वारा स्थापित रामेश्वरम् शिवलिंग की गणना बारह ज्योतिर्लिंगों में की जाती है। श्रीराम द्वारा निर्मित सेतु आज भी पुरातात्त्विक प्रमाणों के साथ इस तीर्थ के निकट ही स्थित है। यहाँ स्थित शिवलिंग पर उत्तर में हिमालय में स्थित गंगोत्री तीर्थ से गंगाजल लाकर चढ़ाने की बड़ी महिमा है। यह परम्परा उत्तर और दक्षिण को जोड़ने

वाली भारत की महान सांस्कृतिक परम्परा है। यहाँ के मुख्य पुजारी उत्तर भारतीय रावल वंशीय होते हैं। रामेश्वरम् का मन्दिर अपनी अद्‌भुत वास्तुकला के लिए भी सुप्रसिद्ध है।

रामसेतु : धार्मिक महत्त्व

वाल्मीकि के महाकाव्य रामायण में रामसेतु का उल्लेख है। रामसेतु का निर्माण भगवान राम की वानर सेना ने नल की देखरेख में इसलिए किया गया था ताकि वानरसेना राक्षसराज रावण का वध करने के लिए लंका पहुँच सके। पुल को तैरते हुए पत्थरों का इस्तेमाल करके बनाया गया था।

ऐतिहासिक महत्त्व वाली एक भव्य संरचना रामसेतु, जिसे एडम्स ब्रिज, नलसेतु और सेतुबांदा भी कहा जाता है, रामायण का एक पुरातात्त्विक और ऐतिहासिक प्रमाण है। मान्यता है कि रामायण में उल्लिखित लंका वर्तमान की श्रीलंका है और रामसेतु भगवान राम द्वारा बनवाया गया था। यद्यपि, पहली सहस्राब्दी के कुछ संस्कृत ग्रंथों के अनुसार, दोनों के बीच एक अन्तर है। इस मान्यता को विशेष रूप से दक्षिण भारत के चोल वंश के शासन के दौरान बढ़ावा दिया गया था, जिसने आर्य चक्रवर्ती राजवंश द्वारा अधिकार करने से पहले द्वीप पर आक्रमण किया था। आर्य चक्रवर्ती राजवंश ने श्रीलंका के जाफना में रामसेतु के संरक्षक होने का दावा किया था।

राम सेतु

समुद्र तटों की कार्बन डेटिंग और समुद्र सम्बन्धित अध्ययनों से इसके समय निर्धारण का पता चलता है जो रामायण काल से मेल खाता है।

पंचकेदार

श्री शिवमहापुराण के अनुसार भगवान् शंकर ने एक बार महिषरूप धारण किया था। उनके उस रूप के पाँच विभिन्न अंग पाँच स्थानों पर प्रतिष्ठित हुए। वे स्थान 'केदार' कहे जाते हैं।

१. श्री केदारनाथ

यह मुख्य केदारपीठ है। यहाँ महिषरूपधारी शिव का पृष्ठभाग प्रतिष्ठित है। इसे प्रथम केदार कहते हैं। शेष चारों केदार-क्षेत्र भी उत्तराखण्ड में ही हैं।

२. श्री मध्यमेश्वर

इनको मनमहेश्वर या मदमहेश्वर भी कहते हैं। यह द्वितीय केदार-क्षेत्र है। यहाँ महिषरूप शिव की नाभि प्रतिष्ठित है। ऊखीमठ (ऊषीमठ) से मध्यमेश्वर १८ मील है। ऊषीमठ से ही वहाँ तक एक मार्ग जाता है।

३. श्री तुंगनाथ

यह तृतीय केदार-क्षेत्र है। यहाँ महिषरूप शिव की बाहु प्रतिष्ठित हैं। केदारनाथ से बदरीनाथ जाते समय तुंगनाथ स्थित हैं। तुंगनाथ-शिखर की चढ़ाई ही उत्तराखण्ड की यात्रा में सबसे ऊँची चढ़ाई है।

४. श्री रुद्रनाथ

यह चतुर्थ केदार क्षेत्र है। यहाँ महिषरूप शिव का मुख प्रतिष्ठित है। तुंगनाथ से रुद्रनाथ-शिखर दिखता है; किन्तु मण्डल चट्टी से रुद्रनाथ जाने का मार्ग है। एक मार्ग हेलंग (कुमारचट्टी) से भी रुद्रनाथ जाता है।

५. श्री कल्पेश्वर

यह पंचम केदार-क्षेत्र है। यहाँ शिव की जटाएँ प्रतिष्ठित हैं। हेलंग (कुमारचट्टी) में मुख्य मार्ग छोड़कर अलकनन्दा का पुल पार करके ६ मील जाने पर कल्पेश्वर का मन्दिर मिलता है। इस स्थान का नाम उरगम है।

सप्तबदरी

भगवान् नारायण लोक-कल्याणार्थ युग-युग में बदरीनाथ के रूप में स्थित रहते हैं। पंचकेदार के समान ही ये सप्तबदरी-क्षेत्र हैं। ये सभी क्षेत्र उत्तराखण्ड में हैं।

१. **आदिबदरी** - वर्तमान बदरीनाथ से माता घाटी पार कर धुलिंग मठ में।
२. **ध्यानबदरी** - उरगम ग्राम में कुमारचट्टी से ६ मील दूर।
३. **वृद्धबदरी** - ऊषीमठ की कुमारचट्टी से ढाई मील दूर।
४. **भविष्यबदरी**- जोशीमठ से ११ मील दूर।
५. **योगबदरी** - पाण्डुकेश्वर से २ मील दूर।
६. **प्रधानबदरी** - बदरीनाथ धाम के नाम से प्रसिद्ध ही प्रधान बदरी है।
७. **नृसिंहबदरी**- जोशीमठ में।

यह कीजिए -

इन पवित्र तीर्थों में से किसी तीर्थ की आपके परिवार या परिचय के किसी व्यक्ति ने यात्रा की है तो उनसे यात्रा वर्णन सुनकर लिखिए। आप भी भविष्य में एक बार इन स्थानों की यात्रा अवश्य कीजिए।

सप्तपर्वत

गिरि महेन्द्र मलयागिरि सह्याद्रि हिमवान।
विन्ध्य अरावली रैवतक पर्वत सात प्रधान॥

पर्वतों को धरती माता का पयोधर कहा जाता है। राष्ट्रीय एकात्मता की दृष्टि से विविध प्रान्तों में स्थित प्रमुख सात पर्वत विभिन्न तीर्थों और सांस्कृतिक, भौगोलिक और ऐतिहासिक महत्त्व को अपने अंक में समाए शताब्दियों से भारतीय जनमानस के श्रद्धाकेन्द्र हैं।

(क) महेन्द्र पर्वत - उड़ीसा के गंजम जिले से तमिलनाडु में मदुरै तक फैली पर्वतश्रृंखला महेन्द्र गिरि या महेन्द्र मलै है। इस पर्वत को भगवान परशुराम की तप:स्थली माना जाता है।

(ख) मलयाचल - कर्नाटक में मैसूर के दक्षिण और केरल में त्रावणकोर के पूर्व में सुगन्धित चन्दन वृक्षों के लिए प्रसिद्ध पर्वत मलयाचल है। यह महर्षि अगस्त्य की तपोभूमि रहा है।

(ग) सह्याद्रि - महाराष्ट्र से कर्नाटक की सीमा तक व्याप्त कृष्णा और कावेरी जैसी पवित्र नदियों का उद्गम सह्याद्रि, भारत के पश्चिमी घाट की सुदीर्घ पर्वतश्रृंखला है। छत्रपति शिवाजी महाराज की शौर्यगाथाएँ कहते रायगढ़,

प्रतापगढ़, सिंहगढ़, पुरन्दरगढ़ आदि दुर्ग इसी पर स्थित हैं। विश्व में जैव विविधता के लिए प्रसिद्ध होने से इसे यूनेस्को की विश्वविरासत सूची में स्थान प्राप्त है।

(घ) देवतात्मा हिमालय - पूर्व से पश्चिम को जोड़ती उत्तर दिशा में स्थित भारत की सीमा का अटल प्रहरी हिमालय ऋषि-मुनियों की प्रिय तपस्याभूमि रहा है। अनेक तीर्थस्थान एवं रमणीयता स्वर्गोपम होने से यह देवतात्मा कहलाया। बदरी, केदार, गंगोत्री, यमुनोत्री, कैलास, मानसरोवर, अमरनाथ आदि अनेक तीर्थ हिमालय में बसे हैं। यह अनेक शक्तिपीठों से समृद्ध है। महर्षि वेदव्यास ने श्रीगणेश जी से महाभारत का लेखन इसी की एक कन्दरा में करवाया था। गंगा, यमुना, सिन्धु आदि सदानीरा पवित्र नदियों का यह उद्‌गम स्थल है। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार यह देवी पार्वती का जनक है। पाण्डवों ने स्वर्गारोहण भी इसी पर्वत के मार्ग से किया था। सामरिक और पर्यावरणीय दृष्टि से भी हिमालय का स्थान हमारे देश के लिए सर्वोच्च है। यहाँ अनेक जैव-प्रजातियाँ और दुर्लभ औषधियाँ पायी जाती हैं।

ये गिरि-पर्वत हिमवन्त, गहन वन तेरे,
हे मातृभूमि! हों मोद-निकेतन मेरे।
पिंगल श्यामल अरुणाभ अनूप अचंचल,
हे हरिपालित बहुरूप धराका अंचल।
अविजित, अक्षत, आघात-रहित नित होकर,
मैं करूँ यहाँ अधिवास त्रास सब खोकर॥

(११, पृथ्वी-सूक्त)

२. हमारा भारत राष्ट्र

मानव इतिहास के इस सर्वोपरि संकटकाल में प्राचीन हिन्दू पथ ही उद्धार कर सकता है। इसमें वह दृष्टिकोण तथा चेतना है जो मानव जाति का एक साथ एक कुटुम्ब की ओर विकास कर सकती है।

– आर्नेल्ड जोसेफ टोइम्बी (ब्रिटिश इतिहासकार)

सिन्धु स्रोत से हिन्दु सिन्धु तक रहते आए, रहते हैं।
इस धरती को माँ कहते जो हिन्दू उनको कहते हैं॥

प्रत्येक व्यक्ति जो सिन्धु नदी से समुद्र तक फैली भारतभूमि को साधिकार अपनी मातृभूमि, पितृभूमि एवं पुण्यभूमि मानता है, वह हिन्दू है।

आसिन्धुसिन्धु पर्यन्ता, यस्य भारत भूमिकाः।
पितृभू पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरितिस्मृतः ॥

वीर सावरकर के अनुसार-हिन्दू भारतवर्ष के देशवासी हैं, जो कि भारत को अपनी पितृभूमि एवं पुण्य-भूमि मानते हैं।

राष्ट्र की हमारी अवधारणा

राष्ट्र की परिभाषा एक ऐसे जनसमूह के रूप में है जो कि एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रहता हो; समान परम्परा, समान हितों तथा समान भावनाओं से बँधा हो; जिसकी अपनी परम्पराएँ हों और जिसमें सांस्कृतिक एकता के सूत्र में बाँधने की प्रतिबद्धता तथा समान महत्वाकाक्षाएँ पाई जाती हों। हमारा राष्ट्र सनातन है, अमर राष्ट्र है, जिसने अपना 'सर्व सम्प्रभुता सम्पन्न गणराज्य' का गौरवमय स्वरूप स्थापित किया है। शताब्दियों से चली आ रही पूर्वजों की परम्पराएँ हमारी धरोहर हैं। हम रूढ़ियों को छोड़कर निरन्तर आगे बढ़ने वाले पूर्वजों की सन्तानें हैं। हम भारतीय 'चरैवेति-चरैवेति प्रचलामो निरन्तरम्' की मान्यता पर चलने वाले हैं।

भारत सांस्कृतिक राष्ट्र

अनेकता में एकता भारत की सांस्कृतिक विशेषता है। योगिराज महर्षि अरविन्द राष्ट्र के विषय में कहते हैं कि यह भूमि, अलंकार या मन की कहानी नहीं बल्कि भाषा, भूमि, जन और संस्कृति से मिलकर बनी रचना है। किसी देश की संस्कृति ही उसके विराट स्वरूप को प्रकट करती है और उसका यह स्वरूप उसके निवासियों के आहार-विहार, वेश-भूषा, गीत-संगीत, कला-साहित्य और नैतिक मूल्यों से अभिव्यक्त होता है। भारतीय संस्कृति का उदात्त दृष्टिकोण ही उसे विश्वगुरुता प्रदान करता है। श्रेष्ठ आध्यात्मिक-सांस्कृतिक विरासत हमारा मार्गदर्शन करती है तथा हमें हमारे लक्ष्य की ओर प्रेरित करती है। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है। भारतीय सनातन संस्कृति कर्मशीलता, उदारता, सहिष्णुता, ग्रहणशीलता, आध्यात्मिकता व भौतिकता का समन्वय है। यह 'सर्वे भवन्तु सुखिनः...' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को पोषित करती है।

एकात्मतास्तोत्रम्

हमारी संस्कृति को अनेक कलाकारों, कवियों, पराक्रमी महापुरुषों ने अपने कर्त्तव्य से पल्लवित-पुष्पित किया है। उनमें से कुछ महापुरुषों का स्मरण नीचे लिखे श्लोकों में है -

भरतर्षिः कालिदासः श्रीभोजो जकणस्तथा।
सूरदासस्त्यागराजो रसखानश्च सत्कविः॥२०॥
रविवर्मा भातखण्डे भाग्यचन्द्रश्च भूपतिः।
कलावन्तश्च विख्याताः स्मरणीयानिरन्तरम्॥२१॥
अगस्त्यः कम्बुकौण्डिन्यौ राजेन्द्रश्चोलवंशजः।
अशोकः पुष्यमित्रश्च खारवेलः सुनीतिमान्॥२२॥
चाणक्य-चन्द्रगुप्तौ च विक्रमः शालिवाहनः।
समुद्रगुप्तः श्रीहर्षः शैलेन्द्रो बप्परावलः॥२३॥
लाचिद् भास्करवर्मा च यशोधर्मा च हूणजित्।
श्रीकृष्णदेवरायश्च ललितादित्य उद्बलः॥२४॥
मुसुनूरिनायकौ तौ प्रतापः शिवभूपतिः।
रणजित्सिंह इत्येते वीरा विख्यातविक्रमाः ॥२५॥

राजा कृष्णदेव राय

अर्थ - नाट्यशास्त्र के आदि गुरु भरत ऋषि, संस्कृत के विद्वान् कालिदास, महाराज भोज, जकण, महात्मा सूरदास, त्यागराज तथा रसखान; महान चित्रकार रविवर्मा तथा वर्तमान संगीत कला के विख्यात उद्धारक भातखण्डे, मणिपुर के राजा भाग्यचन्द्र आदि विख्यात कलाकार सर्वदा स्मरणीय हैं। अगस्त्य, कम्बु, कौण्डिन्य, चोलवंशज राजेन्द्र, अशोक, पुष्यमित्र तथा नीतिज्ञ खारवेल; चाणक्य, चन्द्रगुप्त, पराक्रमी विक्रम, शालिवाहन, समुद्रगुप्त, हर्षवर्द्धन, शैलेन्द्र तथा बप्पा रावल; लाचित बड़फूकन, भास्करवर्मा, हूणविजयी यशोधर्मा, श्रीकृष्णदेवराय तथा ललितादित्य; मुसुनूरिनायकद्वय-प्रोलय नायक और अप्पयनायक, महाराणा प्रताप, महाराज शिवाजी तथा रणजीतसिंह, ये विख्यात पराक्रमी वीर है।

आज का भौगोलिक स्वरूप

भारत का क्षेत्रफल ३२,८७,२६३ वर्ग कि. मी. है, जो हिमाच्छादित हिमालय की ऊँचाइयों से आरम्भ होकर दक्षिण के विषुवतीय वर्षा वनों तक फैला हुआ है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह विश्व का सातवाँ बड़ा देश है।

भारत की भौगोलिक संरचना में लगभग सभी प्रकार के भू-भाग हैं। एक ओर इसके उत्तर में विशाल हिमालय की पर्वतमालाएँ हैं तो दूसरी ओर दक्षिण में विस्तृत महासागर। एक ओर ऊँचा-नीचा और कटा-फटा दक्षिण का पठार है तो दूसरी ओर विशाल और समतल सिन्धु-गंगा-ब्रह्मपुत्र का मैदान। थार के विस्तृत मरुस्थल में जहाँ विविध मरुस्थलीय वनस्पति व पशु पाए जाते हैं तो दूसरी ओर समुद्रतटीय भाग भी है। कर्क रेखा इसके लगभग बीच से गुजरती है और लगभग हर प्रकार की जलवायु पाई जाती है। मिट्टी, वनस्पति और प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से भारत में प्रचुर पर्यावरणीय विविधता है।

हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व

हिन्दू शब्द राष्ट्रवाचक है, जाति या सम्प्रदायवाचक नहीं। एक मातृभूमि, समान इतिहास, समान परम्परा, समान संस्कृति, समान आदर्श, समान जीवन लक्ष्य, समान सुख-दु:ख, समान शत्रु-मित्र-भाव, समान आशा-आकांक्षा आदि भावों से हमारी राष्ट्रीयता प्रकट होती है। हिन्दू जीवनदृष्टि सदैव उदार रही है क्योंकि वह सम्पूर्ण सृष्टि में एक ही परमात्मा के दर्शन करती है, सभी जीवों को ईश्वर का अंश मानती है। हिन्दू परिवार व्यवस्था समरसता का साकार रूप है। यहाँ परिवार का प्रत्येक घटक एक दूसरे के कल्याणभाव से युक्त है। सभी सुखी हों, सभी निरोगी हों, किसी को कष्ट न हो, यह भारतीय वांग्मय की ही घोषणा है। यही हिन्दुत्व की विचारधारा है। सही अर्थों में यही राष्ट्रीयता है।

देश व राष्ट्र में अन्तर

देश - जिसका अपना प्राकृतिक भू-भाग हो, देश कहलाता है। देश नियम और कानून की एक निश्चित सीमा में आबद्ध होता है। एक देश के निवासी विभिन्न जाति, पन्थ, और भाषा बोलने वाले हो सकते हैं। देश एक राजनैतिक इकाई है।

राष्ट्र - देश के निवासियों को समान भाषा, धर्म और संस्कृति के बंधन में बाँधने वाले सूत्र को राष्ट्र कहते हैं। एक देश के निवासियों के परस्पर बन्धुत्व के भाव से राष्ट्र का निर्माण होता है। यह भाव जाति, धर्म और भाषा से ऊपर होता है। हम भारत को अपनी माँ मानते हैं इसलिए भारतीयों में बन्धुभाव सबसे सुदृढ़ है। राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है।

राष्ट्र की एकता व अखण्डता

राष्ट्र की अखण्डता का तात्पर्य विभिन्न जातियों, सम्प्रदायों, धर्मों, भाषाओं और क्षेत्रों की विविधता होने पर भी राष्ट्रीयता की भावना से है। किसी भी देश की उन्नति राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता पर निर्भर करती है। हमारे संविधान में राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में अखण्डता शब्द ४२वें संविधान संशोधन द्वारा जोड़ा गया है। हमारा देश विविध परम्पराओं का देश है जो सम्पूर्ण विश्व में अपनी अलग पहचान रखता है। अलग-अलग वेशभूषा व भाषा होते हुए भी हम सभी एक सूत्र में बंधे हुए हैं तथा राष्ट्र की अखण्डता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। जब-जब भी राष्ट्रीय एकात्मता जिन क्षेत्रों में विभिन्न कारणों से शिथिल हुई, हमारे राष्ट्र को विखण्डन का दंश झेलना पड़ा। कौनसा भू-भाग अखण्ड बृहत्तर भारत से कब-कब अलग हुआ इसका विवरण इस प्रकार है -

कब-कब बँटा भारत

१.	अफगानिस्तान	-	१८७९
२.	नेपाल	-	१९०४
३.	भूटान	-	१९०७
४.	तिब्बत	-	१९१४
५.	श्रीलंका	-	१९३५
६.	म्यांमार	-	१९३७
७.	पाकिस्तान	-	१९४७

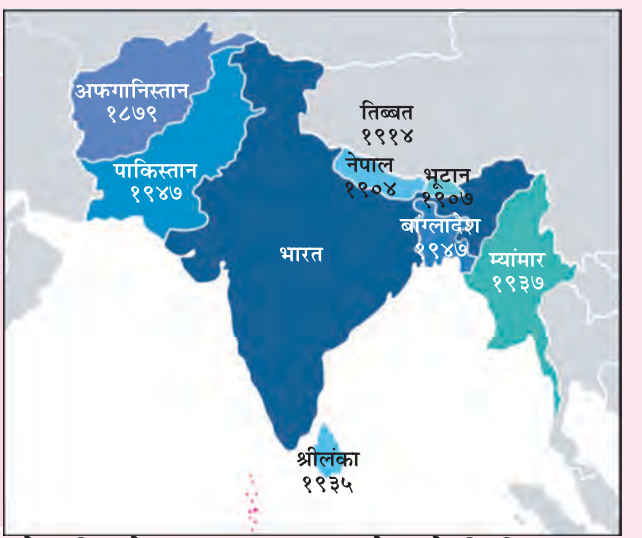

उपर्युक्त जानकारी प्राप्त कर आपके मन में अपने राष्ट्र के प्रति जो भाव जाग्रत हुए हों उन्हें लिखिए।

हमारे राष्ट्रनायक

किसी भी राष्ट्र की संस्कृति में उसके राष्ट्रनायकों का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। वे योद्धा, शासक, समाजसेवी, कलाकार, वैज्ञानिक, सन्त आदि भूमिका में हो सकते हैं लेकिन राष्ट्र निर्माण में उनकी भूमिका अविस्मरणीय और अनुकरणीय होती है। ऐसे ही कुछ महान राष्ट्रनायकों का परिचय यहाँ प्रस्तुत है –

श्रीराम –

श्रीराम भारत के राष्ट्रपुरुष हैं। वे सत्य सनातन धर्म की साकार मूर्ति हैं। अयोध्या के चक्रवर्ती नरेश दशरथ की महारानी कौसल्या के पुत्र रूप में अवतार लेकर मर्यादा का पाठ पढ़ाने वाले श्रीराम के समान राष्ट्रनायक संसार के इतिहास में अन्य कोई नहीं है। गुरु वसिष्ठ से अल्प समय में ही सारी विद्याएँ सीख कर वे महर्षि विश्वामित्र के साथ उनकी यज्ञ रक्षा हेतु गए। यहीं से श्रीराम का धर्म संस्कृति की रक्षा एवं असुरों के विनाश का कार्य आरम्भ हुआ। ताड़का वध, सुबाहु का वध, मारीचि को दण्ड देना, अहिल्या का उद्धार, शिवधनुष भंग कर जनकनन्दिनी सीता से विवाह, तत्पश्चात् पिता की आज्ञा से राजतिलक के स्थान पर चौदह वर्ष का वनवास, निषादराज गुह से मित्रता, शबरी माता के फल ग्रहण करना, बालिवध, सुग्रीव से मित्रता, फिर समुद्र पर सेतु बनवाने जैसा अकल्पनीय कठिन कार्य कर राक्षस कुल सहित कुम्भकर्ण-रावण आदि का वध कर, विभीषण को लंका का राज्य देकर अयोध्या में आदर्श राज्य की स्थापना करने वाला श्रीराम का चरित्र अत्यन्त नीतियुक्त और मर्यादापूर्ण है। श्रीराम हमारे राष्ट्रनायकों में सर्वोच्च शिखर पुरुष हैं।

समर्थ गुरु रामदास –

समर्थ गुरु रामदास

समर्थ गुरु रामदास का जन्म १६०८ ई. में महाराष्ट्र के वर्तमान छत्रपति संभाजीनगर जिले में चैत्र शुक्ल नवमी शक सम्वत् १५३० को हुआ था। इनके पिता का नाम सूर्याजी पन्त तथा माता का नाम राणूबाई था। इनके बचपन का नाम नारायण था। कहा जाता है कि ये बाल हनुमान की तरह बचपन में बहुत चंचल थे। माता की डाँट ने उनका पूरा जीवन बदल दिया जिससे वे हनुमान जी के समान प्रभु श्रीराम के परम भक्त बन गए। १२ वर्ष की अवस्था में राकली नामक स्थान में श्रीराम की १२ वर्ष तक कठोर साधना की। वहीं प्रभु श्रीराम के दर्शन प्राप्त हुए। तभी से समर्थ रामदास कहलाए। समर्थ गुरु रामदास के विषय में कहा जाता है कि एक शिल्पकार ने प्रभु राम, माता सीता और लक्ष्मण की मूर्ति बनाकर उनके पास भिजवा दी थी। समर्थ गुरु रामदास ५ दिन तक उस देव प्रतिमा के समक्ष निर्जल उपवास कर १६८२ ई॰ में ७३ वर्ष की आयु में पद्मासन में बैठकर रामनाम का जाप करते हुए ब्रह्मलीन हो गए। छत्रपति शिवाजी महाराज को हिन्दवी स्वराज्य की स्थापना के लिए प्रेरणा देने में श्री समर्थ रामदास जी का विशिष्ट महत्त्व है।

हारीत मुनि

हारीत ऋषि की मान्यता अत्यन्त प्राचीन धर्म सूत्रकार के रूप में है। बोधायन धर्म-सूत्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र और वासिष्ठ धर्मसूत्रों में हारीत को बार-बार उद्धृत किया गया है। हारीत के सर्वाधिक उद्धरण आपस्तम्ब धर्मसूत्र में प्राप्त होते हैं। तन्त्रवार्तिक में हारीत का उल्लेख गौतम, वसिष्ठ, शंख और लिखित के साथ है। परवर्ती धर्मशास्त्रियों ने भी हारीत के उद्धरण बार-बार दिये हैं।

धर्मशास्त्रीय निबन्धों में उपलब्ध हारीत के वचनों से ज्ञात होता है कि उन्होंने धर्मसूत्रों में वर्णित प्रायः सभी विषयों पर अपने विचार प्रकट किए थे। प्रायश्चित के विषय में हारीत ऋषि के विचार देखिए –

'यथावयो यथाकालं यथाप्राणञ्च ब्राह्मणे,
प्रायश्चिते प्रदातव्यं ब्राह्मणैर्धर्मपाठकैः।
येन शुद्धिमवाप्नोति न च प्राणैर्वियुज्यते,
आर्तिं वा महतीं याति न चैतत् व्रतमादिशेत्॥

अर्थात् धर्मशास्त्रों के ज्ञाता न्यायिक द्वारा पापी को उसकी आयु, समय और शारीरिक क्षमता को ध्यान में रखते हुए दण्ड देना चाहिए। दण्ड ऐसा हो कि वह पापी का सुधार करे, ऐसा नहीं जो उसके प्राण ही ले ले। पापी या अपराधी के प्राणों को संकट में डालने वाला दण्ड देना उचित नहीं है।

गुरु गोविन्द सिंह –

गुरु तेग बहादुर व बालक गोविन्द

सिख गुरु परम्परा में नौवें गुरु तेगबहादुर परम सौम्य एवं परहितचिन्तक महापुरुष थे। उन्होंने समझ लिया था कि धर्मकी रक्षा उनके पुत्र के द्वारा ही होगी। आक्रमणकारियों के अत्याचार से पीड़ित कुछ व्यक्तियों की व्यथा सुनकर गुरु तेगबहादुर एक दिन उदास बैठे थे, बालक गोविन्द ने उदासी का कारण पूछा। गुरु ने बताया कि देश और धर्म को किसी महान् आत्मा के बलिदान की आवश्यकता है। बालक की तेजस्विता व्यक्त हो गयी– 'आपसे बढ़कर संसार में महान् आत्मा कौन है?' गुरु तेगबहादुर ने बालक की बात हृदय में रख ली। मुसलमानों के अत्याचार से पीड़ित, शरण में आये ब्राह्मणों के द्वारा उन्होंने घोषित कराया – 'गुरु तेगबहादुर इस्लाम स्वीकार कर लें तो सब हिंदू मुसलमान हो जायें।' औरंगजेब ने धूर्ततापूर्वक उन्हें दिल्ली बुला लिया और नृशंसतापूर्वक वध हुआ उनका। हँसते-हँसते उन्होंने धर्मरक्षा के लिए शरीर छोड़ दिया।

गुरु गोविन्द सिंह पर पिता के बलिदान का गहरा प्रभाव तो पड़ा। उन्होंने देख लिया कि औरंगजेब के अत्याचार से हिंदू-धर्म की रक्षा केवल संगठित सैनिक शक्ति से ही सम्भव है। नैना देवी के पर्वत पर वर्षभर भवानी की सन्तुष्टि के लिये यज्ञ किया गुरुदेव ने उन वीरों को चुन लिया, जो धर्म के लिये स्वयं बलिदान होने को उद्यत हुए। ये 'पंज प्यरे' वीर 'खालसा' कहलाये। स्वयं गुरुदेव ने इन्हें 'अमृत' पिलाया और उनके हाथ से पिया। 'खालसा' वही हो सकता है, जो पाँच खालसा बन्धुओं के हाथ से अमृत (कृपाण से आलोड़ित जल) पी ले। सिख-जाति सम्पूर्ण सैनिक वृत्ति से युक्त हो गई। गुरु

गोविन्द सिंह ने प्रत्येक सिख के लिये कंघी, कच्छ, कर्द (कड़ा), केश और कृपाण धारण करना अनिवार्य किया। स्वयं गुरु जी ने दो कृपाण धारण कीं जिन्हें वे मीरी ओर पीरी (शास्त्र और शस्त्र) की पहचान बताते थे।

हमारी समाज व्यवस्था

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। हम परिवारों में रहते हैं, हम समूह में काम करते हैं, तदनुसार अपने कर्त्तव्य का निश्चय करते हैं। सामाजिक व्यवस्था में हर व्यक्ति की एक परिस्थिति होती है। देश-काल के अनुसार या कुल परम्परा से जो परिस्थिति रहती है वह प्राप्त परिस्थिति कही जाती है। इसके विपरीत आरोपित परिस्थिति वह है जो व्यक्ति पर समूह या समाज द्वारा थोपी जाती है। यह लिंग, जाति या आयु पर आधारित होती है।

सामाजिक व्यवस्था समाजशास्त्र की अवधारणा है, जो समाज के विभिन्न घटकों की कार्य करने के तरीके को सन्दर्भित करती है। प्राचीन काल से सामाजिक व्यवस्था में कार्य विभाजन की दृष्टि से हिन्दू समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया था – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। प्रत्येक समाज अपने विकास के लिए कार्य करता है। यह ऐसी संस्था है, जो मानव द्वारा निर्मित है और मानव ही इसके अंग हैं।

समाज का स्वरूप : समरसता और दायित्व

समाज की सांस्कृतिक अवधारणा को समझने के लिए हमारे पूर्वजों ने समाज की कल्पना एक ऐसे विराट पुरुष के रूप में की है जो –

ॐ नमोऽस्त्वनंताय सहस्रमूर्तये, सहस्रपादाक्षिशिरोरूबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते, सहस्रकोटि युगधारिणे नमः॥

हजारों देह, हाथ, पैर, आँख, सिर, पेट और नामों वाले, युगों-युगों से रहने वाले और कभी समाप्त न होने वाले परमेश्वर के समान ही विराट स्वरूप समाज का है। इतनी विविधता होते हुए भी उसकी आत्मा एक है। उसकी विभिन्नता ऊपरी है, आन्तरिक रूप से वह एक है। यही भारतीय समाज की सांस्कृतिक अवधारणा है।

जो समाज की बाहरी विभिन्नताओं को ही देखते हैं, वे उसे बँटा हुआ, बिखरा हुआ ही मानते हैं लेकिन जिन्हें इसकी आन्तरिक एकात्मता का अनुभव होता है, वे इसका अखण्डित, संयुक्त, एकत्व रूप में ही दर्शन करता है। यह आन्तरिक एकात्मभाव ही समरसता है। जैसे हाथ, पैर, मुँह आदि अंग शरीर से अलग नहीं हैं यद्यपि सबके अपने नाम, रूप, आकार हैं पर वे शरीर से अभिन्न हैं, वैसे ही हमारा समाज एक है। यह भारतीय सामाजिक दर्शन है।

देह के प्रत्येक अंग-उपांग का शरीर के प्रति सुनिश्चित सम्बन्ध तो है ही, उनका कर्त्तव्य भी है। अपने सम्बन्ध व कर्त्तव्यों को भूलकर कोई अंग देह का अंग होने की सार्थकता खो बैठता है। वैसे ही समाज में हर जाति, वर्ण, रंग, योग्यता, कुशलता व आर्थिक सामर्थ्य के लोग होते हैं और सबकी समाज के बृहद् रूप अर्थात् राष्ट्र के सन्दर्भ में सुनिश्चित उपयोगिता है, कर्त्तव्य है, दायित्त्व है। ये दायित्त्व एक-दूसरे के अधिकारों के पूरक हैं, सहयोगी हैं, विरोधी नहीं। एक का कर्त्तव्य दूसरे के अधिकारों का स्वाभाविक पोषक होता है इसलिए सबकी कर्त्तव्य भावना विशुद्ध और प्रबल होने पर सबके अधिकार भी सुरक्षित रूप से प्राप्त हो जाते हैं, किसी को उन अधिकारों के लिए संघर्ष की आवश्यकता ही नहीं रहती। ऐसा समाज ही धार्मिक समाज है। ऐसा राज्य ही धर्मराज्य है क्योंकि धर्म सनातन है और सनातन धर्म ही समाज जीवन में नैतिक मूल्यों और कर्त्तव्यों के अनुसार प्रत्येक मनुष्य के लिए आचार पद्धति निर्धारित करता है, जो न केवल मानवों अपितु सचराचर प्रकृति के लिए भी 'सर्वभूतहितेरताः' अर्थात् सबका भला, सबका ध्यान रखने की सीख देता है। हममें से प्रत्येक को अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान ही स्वस्थ, समरस व एकात्म समाज का मूल आधार है।

३. हमारी भारतीय संस्कृति

संसार में एकता के दर्शन कर उसके विविध रूपों के बीच परस्पर पूरकता को पहचान कर, उनमें परस्परानुकूलता का विकास करना तथा उसका संस्कार करना ही संस्कृति है। प्रकृति को ध्येय की सिद्धि के अनुकूल बनाना संस्कृति तथा उसके प्रतिकूल बनाना विकृति है। – दीनदयाल उपाध्याय

भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे प्राचीन संस्कृति है जिसमें मानव जीवन ही नहीं, सम्पूर्ण सृष्टि के लिए जीवन आदर्शों की अभिव्यक्ति है।

धर्म की भाँति संस्कृति को भी प्रायः आधे-अधूरे अर्थ में परिभाषित किया जाता है, जैसे- विद्यालयों में जो रंगमंचीय कार्यक्रम, गीत-संगीत, नृत्य-नाटक आदि होते हैं, उन्हें सांस्कृतिक कार्यक्रम कहते हैं। हमारी संस्कृति का परिचय अन्य देशों को भी हो, इस दृष्टि से कलाकारों का जो दल विदेशों में भेजा जाता है, उसमें गायक-नर्तक आदि होते हैं। उस को सांस्कृतिक दल कहा जाता है। इसी तरह वेशभूषा, खानपान के पदार्थ, अलंकार आदि के प्रदर्शन भी सांस्कृतिक प्रदर्शन कहे जाते हैं। अतः लोकमानस में संस्कृति का यही स्वरूप अंकित हो गया है। ये सब संस्कृति के अंग तो हैं, परन्तु केवल ये ही संस्कृति नहीं है। फिर संस्कृति क्या है?

प्रत्येक देश का एक जीवन दर्शन होता है। उस जीवन दर्शन के आधार पर वहाँ की प्रजा अपना जीवन जीती है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी वैसा आचरण करते-करते सम्पूर्ण प्रजा की एक जीवनशैली बनती है, यही संस्कृति कहलाती है। भारतीय प्रजा की जो जीवनशैली है, वही भारतीय संस्कृति है।

संस्कृति का धर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध है। धर्म वैश्विक नियम हैं, एक सार्वभौम व्यवस्था है। धर्म के अनुसार की गई सम्यक् कृति ही संस्कृति है। संस्कृति धर्म की प्रणाली है। जैसे विद्यार्थी का धर्म है पढ़ना। पढ़ाई करने के लिए विद्यार्थी ब्रह्ममुहूर्त में उठता है, स्नान-ध्यान करता है, गुरु-सेवा करता है, स्वाध्याय करता है और ब्रह्मचर्य अपनाता है। यह जीवन शैली भारतीय संस्कृति है। अन्न को, गाय को, तुलसी को तथा जल को पवित्र मानकर जो व्यवहार की शैली बनी है, वह संस्कृति है। हम भोजन करने बैठते हैं, उसी समय कोई मिलने आ जाता है तो हम उसे भी अपने साथ भोजन करने बिठाते हैं, भले ही वह पूर्व में सूचना देकर नहीं आया हो, यह भारतीय संस्कृति है। इस प्रकार केवल कलाएँ संस्कृति नहीं हैं। उन कलाकृतियों में प्रजा की जीवनदृष्टि जिस रूप में अभिव्यक्त होती है, वह संस्कृति है। भारतीय जीवनदृष्टि जीवन के सकारात्मक दृष्टिकोण को व्यक्त करने की पक्षधर है।

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव एवं अतिथिदेवो भव, भारतीय संस्कृति के आचार हैं। युद्ध में भी धर्म को नहीं छोड़ना, यह भारतीय संस्कृति की रीति है। शैली व रीति समानार्थी शब्द हैं। भारतीय संस्कृति की एक और रीति है, **सर्वेभवन्तु सुखिनः तथा ईशावास्यमिदंसर्वम्।** अर्थात् प्राणीमात्र के सुख की कामना और सबके हित की चाहना, यह भारतीय संस्कृति की रीति है। भोजन को ब्रह्म मानना और उसे प्रसाद मानकर ग्रहण करना भी भारतीय संस्कृति की रीति है।

धर्म और संस्कृति शब्द साथ-साथ प्रयुक्त होते हैं। क्योंकि संस्कृति धर्म का अनुसरण करती है। संस्कृति में आनन्द का भाव भी जुड़ा होता है। जीवन में जब आनन्द का अनुभव होता है, वह नृत्य, गीत व काव्य आदि के माध्यम से व्यक्त होता है। भारतीय संस्कृति में सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् की अभिव्यक्ति है। इस सांस्कृतिक अभिव्यक्ति में रस है, सौन्दर्य है, आनन्द है। सारांश रूप में, जीवन में सत्य और धर्म की अभिव्यक्ति को सुन्दर बना देना भारतीय संस्कृति की विशेषता है।

संस्कृति व सभ्यता का सम्बन्ध

संस्कृति के साथ 'सभ्यता' शब्द भी जुड़ा है। दोनों का मानव विकास में बड़ा योगदान है किन्तु इन के स्वरूप में भिन्नता है। संस्कृति सूक्ष्म है, सभ्यता स्थूल है। सामान्य व्यक्ति की दृष्टि सूक्ष्म नहीं होती, उसे स्थूल वस्तुएँ ही दिखाई देती हैं। इसलिए सभ्यता दिखती है, संस्कृति सहज रूप से नहीं दिखती। सभ्यता का विकास संस्कृति में से ही होता है। सभ्यता की आधारभूमि संस्कृति है। संस्कृति के मूल्यों के आधार पर व्यक्ति उत्कृष्टता प्राप्त करना चाहता है, इसके लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न करता है। उसमें से ही सभ्यता जन्म लेती है। उदाहरण के लिए, शुचिता एक सांस्कृतिक मूल्य है। व्यक्तिगत जीवन में व्यक्ति शुचिता हेतु स्नान करता है। स्नान को विशेष महत्त्व देने से नियमित स्नान जीवनचर्या का अंग बन गया। सुव्यवस्थित स्नान करने की अन्त:प्रेरणा से उसने शनै:-शनै: व्यवस्था की – नदी किनारे घाट बनवाये, घाट पर सीढ़ियाँ बनवाईं। वास्तुकला का विकास होते-होते उसने स्नान करने की व्यवस्था घर के निकट बनवायी, तालाब और कुएँ अस्तित्व में आए। वैज्ञानिक विकास के चलते पानी घर के अन्दर आने लगा, तब मानव ने बन्द कमरे में स्नान की व्यवस्था कर ली। अब गंगाजी से सौ किलोमीटर दूर रहने वाला व्यक्ति भी अपने शयनकक्ष के एक कोने में बने स्नानागार में सुविधा से गंगाजल में स्नान करता है। इस प्रक्रिया में संस्कृति का स्थायी मूल्य शुचिता अर्थात् स्वच्छता एवं पवित्रता है। उसके लिए व्यवस्थाएँ बनीं और समय-समय पर बदलती गईं, समाजव्यापी बनती गईं। उसमें अधिक सुविधा मानवी प्रयासों के फलस्वरूप सम्भव हो पायी। विकास की इस प्रक्रिया को हम सभ्यता कहते हैं।

सभ्यता के मूल में संस्कृति होती है। सभ्यता बाह्यस्वरूप है, इसलिए दिखाई देती है। संस्कृति का स्वरूप आन्तरिक होने के कारण हमें दिखाई नहीं देता। उदाहरण के लिए, हमने रामेश्वरम् मन्दिर की पुस्तिका ली। हमें क्या वर्णन पढ़ने को मिलता है? मन्दिर का गोपुरम् गगनचुम्बी है, शिखर स्वर्णमंडित है, उस पर ध्वजा इतनी लम्बी है, सहस्र स्तम्भ मण्डप हैं, विशाल बरामदा है, आदि-आदि। किन्तु मन्दिर की मूर्ति का वर्णन बहुत थोड़ा सा मिलता है। विचार करें, क्या उस छोटी सी मूर्ति के बिना मन्दिर की कल्पना की जा सकती है? किन्तु उसका वर्णन नहीं के बराबर और अधिक वर्णन मन्दिर के बाह्य स्वरूप का ही होता है। इस उदाहरण में जो स्थान मूर्ति का है, वह संस्कृति है और जो स्थान शिखर का है, वह सभ्यता है। मूर्ति सदैव वही रहती है परन्तु बाह्य स्वरूप समय-समय पर बदलता रहता है। जैसे मूर्ति के बिना मन्दिर की कल्पना नहीं की जा सकती, वैसे ही संस्कृति के बिना सभ्यता असम्भव है। विश्व में कुछ देश ऐसे थे, जो सभ्यता के विकास में अग्रणी थे। यूनान, मिस्र, रोम जैसे देशों में सभ्यता का विकास चरमोत्कर्ष तक पहुँचा, परन्तु वे सभ्यताएँ जब संस्कृतिविहीन हो गईं, तो वे सभ्यताएँ ही नष्ट हो गईं।

संस्कृतिविहीन सभ्यता, असभ्यता होगी और वह मानव को विकृत दिशा में ले जायेगी, उसे निरंकुश बनायेगी। अत: संस्कृति व सभ्यता के सम्बन्ध को समझकर तदनुसार व्यवहार करना सुसंस्कृत समाज से अपेक्षित है।

भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ

'संस्कृति' एक व्यापक प्रत्यय है। इस प्रत्यय में समाज एवं देश के धर्म, दर्शन, साहित्य, विज्ञान, रीति-रिवाज, परम्परा, सामाजिक संगठन और आध्यात्मिक तथा मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का समावेश रहता है। यह अतीत की परम्परा और वर्तमान के अनुभव पर आधारित रहती है। भारतीय संस्कृति इसलिए मूल्यवान और विशेष है क्योंकि इसका उद्देश्य सर्वविधि अभ्युदय है। इसमें मनुष्य का, सर्वसमाज का, देश का और सम्पूर्ण विरासत का अभ्युदय निहित है।

किसी सुदृढ़, समुन्नत और सभ्य संस्कृति का निर्माण जिन कारकों से होता है, वे सब भारतीय संस्कृति में समाहित हैं। संस्कृति की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ मानी जाती हैं –

१. संस्कृति प्रकृति से प्राप्त नहीं होती है, मानव निर्मित होती है। मनुष्य संस्कृति का निर्माता होता है। संस्कृति का सम्बन्ध मानवेतर सृष्टि से भी है।

२. संस्कृति पिछली पीढ़ी से सीखी जाती है और पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होती है।

३. संस्कृति मूल्यनिष्ठ होती है। वह स्वयं मूल्य का अधिष्ठान होती है।

४. संस्कृति में सर्वविधि अभ्युदय के तत्त्व समाहित रहते हैं।

५. संस्कृति किसी समाज और राष्ट्र का आन्तरिक तत्त्व है।

६. प्रत्येक समाज और राष्ट्र की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है।

७. संस्कृति किसी व्यक्ति विशेष की देन न होकर, सम्पूर्ण समाज की देन है।

८. संस्कृति समाज के लिए आदर्श होती है। जो संस्कृति हमें ऊर्ध्वारोहित करती है, वही विशिष्ट संस्कृति होती है।

९. स्थान, समय, समाज की परिस्थितियों के अनुरूप संस्कृति बदलती नहीं है। संस्कृति के मूल्य शाश्वत होते हैं।

१०. सांस्कृतिक चेतना वैयक्तिक होते हुए भी सामूहिक होती है।

इन सारी विशेषताओं को भारतीय संस्कृति के स्वभाव और व्यवहार में देखा जा सकता है।

समन्वय की भावना भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है। इस संस्कृति में जो समन्वय दृष्टि है, विविधता में एकता का आदर्श है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

संस्कारों की पावन परम्परा

संस्कार व्यक्तित्व के विकास और चरित्र के निर्माण के आधारभूत तत्त्व हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है–

जड़चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥

अर्थात् संसार की सभी वस्तुएँ और प्राणी गुण और दोष दोनों से युक्त हैं। जैसे मनुष्य वस्तुओं का उपयोग करने हेतु उसके दोष दूर करता है और गुणों को बढ़ाने का उपाय करता है, वैसे ही मनुष्य के जीवन में दोषों को दूर करने और गुणों में वृद्धि करने की प्रक्रिया आवश्यक है। यह प्रक्रिया शारीरिक व मानसिक अर्थात् बाहरी और आन्तरिक दोनों होती है। इसे ही संस्कार कहते हैं। स्वच्छता, शुद्धता, सभ्यता आदि बाह्य संस्कार हैं जिन्हें स्नान, शौचाचार, दैनन्दिन क्रियाओं, व्यवहारों और वेशभूषा आदि में देखा जा सकता है। ये आचार हैं। सत्य, अहिंसा, दया, प्रेम, साहस, परोपकार आदि आन्तरिक भाव हैं। इन्हें 'विचार' भी कह सकते हैं। संस्कार आचार-विचार से मिलकर बनते हैं।

शास्त्रों में कुछ संस्कार प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक माने गए हैं जिन्हें गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक के सोलह संस्कार कहते हैं। अनेक सूक्ष्म संस्कार भी हैं जो व्यक्ति के स्वभाव, गुण, योग्यता आदि के आधार पर प्राप्त करना होता है।

संस्कारवान नागरिकों से ही उत्तम समाज, उत्कृष्ट संस्कृति और सर्वसमर्थ राष्ट्र की निर्मिति संभव है। हमारा राष्ट्र व संस्कृति प्राचीनकाल से ही सर्वश्रेष्ठ रही है। हमें संस्कारित नागरिक के रूप में इसकी श्रेष्ठता बनाए रखने का कर्त्तव्य निर्वाह करना है।

४. हमारी परिवार व्यवस्था

सुख-दु:ख जिनके साझे होते, पूर्वज जिनके एक हैं।
एक रक्त सम्बन्ध वंश का परिवारी प्रत्येक है।।

परिवार हमारी शक्ति एवं आन्तरिक ऊर्जा का केन्द्र है। इसके बल पर ही हम सामाजिक जीवन का सर्वोच्च प्राप्त कर सकते हैं। यह संस्कृति एवं जीवन मूल्यों की प्राथमिक पाठशाला भी है। परिवार से ही हमारे सद्‌गुणों का विकास होता है। व्यक्ति के विकास में उसके परिवार का बहुत बड़ा योगदान होता है। बच्चे पर प्रथम प्रभाव परिवार के वातावरण का ही पड़ता है। यदि पारिवारिक वातावरण अच्छा है तो उसकी मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक क्षमता में सकारात्मक परिवर्तन देखा जा सकता है। इसके विपरीत, यदि वातावरण ठीक नहीं है तो उसका विकास अवरुद्ध होने लगता है, मानसिक एवं बौद्धिक रूप से कमजोर होने लगता है। वात्सल्य, ममत्व, स्नेह, त्याग, विश्वास आदि परिवार के अधिष्ठान हैं। ये जिस परिवार के सदस्यों में स्वनिहित है, वह आदर्श परिवार का उदाहरण है। भारत की संयुक्त परिवार व्यवस्था विश्व में अप्रतिम है। अथर्ववेद में कहा गया है –

''नितद् दधिषे अवरेपरे च यस्मिनावियावसा दुरोणे'

– अथर्ववेद ५.२.६

अर्थात्- जिस घर में छोटे-बड़े सब मिलकर रहते हैं, वह घर अपने बल पर सदा सुरक्षित रहता है।

परम्परागत रूप से ही भारतीय परिवार व्यवस्था विश्व में सर्वोत्तम रही है। संयुक्तता और कर्त्तव्यपरायणता इस व्यवस्था की मूल विशेषताएँ हैं। वर्तमान युग में पाश्चात्य चिंतन के दुष्प्रभावों के कारण हमारा चिंतन भी भौतिकवादी होता जा रहा है। धन-सम्पत्ति और सुविधाओं की अंधी दौड़ में स्नेह, कर्त्तव्य और अपनेपन की अनुभूति से दूर होते जा रहे हैं जिससे हमारे परिवार सीमित आय, कम संसाधनों और न्यूनतम सुविधाओं में भी अपार सुख, संतोष और आनन्द से जीते थे और परोपकार का पुण्य कमाते थे; समाज, धर्म, संस्कृति के प्रति अपना कर्त्तव्य निर्वाह करते थे।

भारतीय परिवार सुखी परिवार

आज जब अतिशय दौड़धूप कर, नैतिक-अनैतिक का भी अविचार करके धनार्जन करते हैं, अपनों से दूर भीड़ में अकेले होकर जी रहे हैं। परिवार संकुचित होते जा रहे हैं। इससे परस्पर सुख-दु:ख बाँटने या सहयोग के अवसर सिमटते जा रहे हैं।

व्यक्ति, परिवार, समाज सभी स्तरों पर विघटित होते जा रहे हैं। यह टूटन हमारे राष्ट्रजीवन को प्रभावित करने वाली है। यह मानवता के लिए भी संकटप्रद सिद्ध होगी इसलिए अपनी भारतीय परिवार व्यवस्था के सुदृढ़ीकरण के सभी युगानुकूल प्रयत्नों की बहुत आवश्यकता है।

परिवार पाठशाला है पहली, माँ की गोदी है कक्षा।
पहली गुरु माता होती है देती स्नेहमयी शिक्षा।।

बताइए कि - हमारा परिवार भारतीय परिवार बना रहे इसके लिए आपकी दृष्टि से किन सकारात्मक उपायों को किया जाना चाहिए।

स्वदेशी पर विदेशी आक्रमण

जागरण होगा स्वदेशी मंत्र से, आयेगा वैभव स्वदेशी तंत्र से।

क्या आप जानते हैं कि हमारे देश में ४९०० से अधिक नई-पुरानी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ लाभ कमा कर भारत का धन विदेश भेज रही है। उपभोक्ता वस्तुओं के क्षेत्र में बाजार इनके उत्पादनों से भरे हैं जो अपने देश की अर्थव्यवस्था के लिए खतरे की घण्टी है। बहुराष्ट्रीय कम्पनी यूनियन कार्बाइड के भोपाल में स्थित प्लान्ट से विषैली गैस ''मिथाइल आइसोसाइनेट'' के रिसाव से १०,००० लोगों की जान गई। ८०,००० लोग अपंग हो गये और २,८०,००० लोगों पर उसका कुप्रभाव पड़ा।

क्या आप जानते हैं कि विदेशी और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को भारत सरकार ने इसलिए निमन्त्रण दिया था कि वे विदेशी पूँजी लगायेंगी तथा भारतवासियों को काम मिलेगा। जबकि १९५६ से सन् १९७५ तक देश में व्यापार कर रही ५० बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने केवल ५.३ प्रतिशत विदेशी पूँजी ही लगायी। हमारे सामने एक ही मार्ग है- स्वदेश-हित के लिए संकल्प लें कि हम अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए केवल स्वदेशी वस्तुओं को ही अपनाएँगे। हम स्वदेशी वस्तुएँ अपनाकर, स्वावलम्बन एवं आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ते हैं। हम स्वदेशी के पक्षधर हैं और देश के सम्मान एवं समृद्धि हेतु बड़े से बड़ा कष्ट उठाने के लिए तैयार हैं।

सामाजिक प्रचार माध्यम (सोशल मीडिया) का प्रभाव

वर्तमान जीवन शैली में कोई व्यक्ति प्रतिदिन जितना समय आधुनिक संचार साधनों के साथ व्यतीत करता है, अनुसंधानकर्त्ताओं का आकलन है कि वह उसके जीवन का औसतन दस प्रतिशत समय है। यह अवधि निरन्तर बढ़ती जा रही है। जिन्हें इसकी बहुत आवश्यकता नहीं होनी चाहिए, ऐसे बच्चे, बड़े, महिला, पुरुष किसी न किसी रूप में इस संचार-प्रचार के मायाजाल में फँसे हुए हैं। इसके अनेक दुष्परिणाम भी उनके सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन पर दिखाई देते हैं। यह सत्य है कि ये प्रचार माध्यम शीघ्र सूचना एवं विमर्श निर्मित करने में महत्त्वपूर्ण प्रभाव रखते हैं, उन बिन्दुओं पर भी ध्यान देना चाहिए जो हमारे आचार-विचार-व्यवहार व संस्कार को दुष्प्रभावित कर रहे हैं। तंत्र का विरोध नहीं है तो भी सावधानी के लिए सोचना आवश्यक है कि –

१. सामाजिक प्रचार माध्यमों को दिया जाने वाला समय पहले कहाँ व्यय होता था? घर-परिवार के व्यक्तियों, मित्रों से मिलने, बातें करने में, खेलने, घूमने आदि में। इन सबसे हमारे और हमारे परिवार व सम्बन्धियों के सामूहिक जीवन, परस्पर सुख-दु:ख की अनुभूति, सेवा, सहायता और शारीरिक स्वास्थ्य का गहरा सम्बन्ध था। मोबाइल पर चैट करके इसकी पूर्ति नहीं हो सकती और मोबाइल गेम शरीर को पुष्ट, सुदृढ़, स्वस्थ नहीं बना सकते।

२. सामाजिक प्रचार तंत्र के कारण हमने अपनी तर्कक्षमता, स्मरणशक्ति, मानसिक शान्ति को भंग किया है। स्क्रीन पर स्क्रॉल करते हुए हम अनेक अनुपयोगी, अनावश्यक और न जानने योग्य जानकारियों से अपना स्मृतिकोष भर लेते हैं जिससे अनेक आवश्यक जानकारियों के लिए स्थान कम पड़ जाता है। इससे हमारे चिंतन- मनन-स्मरण की क्षमता प्रभावित होती है। वस्तुत: इन माध्यमों का हम उपयोग नहीं कर रहे होते हैं बल्कि वे ही हमारा उपयोग कर अपना व्यापार बढ़ा रहे हैं। यह ऐसी लूट है जिसमें हम स्वयं लुटने को आतुर रहते हैं। सोते, बैठते, चलते, खाते-पीते जब तक हम पूरी तरह थक कर सो न जाएँ, यह तंत्र हमें अपने में व्यस्त रखता है। शरीर के साथ मन की, चित्त की इस विचार दौड़ में जो दशा होती है वह हमें ठीक से गहरी नींद भी नहीं लेने देती। हम जो कुछ उससे ग्रहण कर रहे

हैं वह हमारे विचारों को भी अपमिश्रण से भर रहा है। यह मिलावट हमारे संस्कारों को दुर्बल व निष्प्रभावी बनाती है।

सामाजिक संचार माध्यमों का उपयोग पूरी सावधानी व संयम से करना चाहिए ताकि हमारे मन-मस्तिष्क में, विचारों तथा जानकारियों का अनियन्त्रित यातायात न बने अन्यथा दुर्घटनाएँ व गतिरोध ही अधिक होंगे।

मातृभाषा

भारत और भाषा-विज्ञान! आज के पाश्चात्य जगत का भाषा-विज्ञान लगभग 1000 वर्ष से अधिक समय पूर्व के भारत के भाषा-विज्ञान की प्रत्यक्ष देन है।

– मरे बार्नसन इमेनो (कैलीफोर्निया)

हम अपने माता-पिता और परिवार के सदस्यों से स्वत: एक भाषा सीखते हैं, वही हमारी मातृभाषा या प्रथम भाषा कहलाती है। अपने प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा हम उसे सहज परिवेश में सीखते हैं। अपने आप-पास की वस्तुओं, घटनाओं, दृश्यों, प्राणियों और क्रियाओं को देखने और सुनने से प्राप्त अनुभवों की प्रतिमाएँ उसके मस्तिष्क पर अंकित होती जाती हैं। इन अनुभवों के साथ-साथ व्यक्ति की भाषायी क्षमताओं का भी निरन्तर विकास होता है।

मातृभाषा का जीवन और शिक्षा से गहरा सम्बन्ध है। भाषा विद्यालय में पढ़ाया जाने वाला एक विषय या अन्य विषयों की शिक्षा का माध्यम नहीं अपितु हमारे दैनिक जीवन का अविभाज्य अंग है। हमारे व्यक्तित्व के निर्माण और बौद्धिक विकास में मातृभाषा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

भाषा विचार-सम्प्रेषण का साधन है, जिसका प्रयोग हम प्रभावी ढंग से अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए करते हैं। अत: भाषा की शुद्धता का होना आवश्यक है। जिस समय हम जिस भाषा में बात कर रहे हों उस समय अन्य भाषा के शब्दों का प्रयोग प्रयुक्त भाषा की शुद्धता को भंग करता है।

भाषा शुद्धता की आवश्यकता -

बड़ी आसानी से प्रचलित अन्य भाषाओं के शब्दों को अपने में समाहित कर लिया है इसलिए इनमें देशज शब्दों के अलावा अंग्रेजी सहित अन्य विदेशी भाषाओं के शब्द विद्यमान हैं। उदार भाव के कारण भाषाएँ अधिक समृद्ध, सक्षम और समर्थ हुई हैं। सभी भारतीय भाषाओं में एक शब्द के अनेक पर्याय मिलते हैं और इनका मूल आधार संस्कृत है।

कश्मीर से कन्याकुमारी तक फैले हुए भारत में अनेक प्रान्त और उनकी अलग-अलग प्रादेशिक भाषाएँ हैं। उत्तर में हिन्दी बोली जाती है, वहीं दक्षिण के राज्यों में तेलुगु, कन्नड़, तमिल, मलयालम में वार्तालाप किया जाता है। इस रूप में सभी भारतीय भाषाएँ आपस में सहोदरा और एक दूसरे की पूरक हैं। हिन्दी के औदार्य के कारण अन्य भाषाओं के शब्दों के प्रयोग की अधिकता बढ़ी है जिससे इसकी शुद्धता भंग हुई है। हम भाषा की शुद्धता द्वारा अपनी सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक धरोहर को सजीव रख सकते हैं। भाषा विचारों के हस्तान्तरण का मुख्य माध्यम है। अत: भाषा में शुद्ध शब्दों के प्रयोग अर्थ को स्पष्ट करने में सहायक होता है। भाषा शुद्धता हेतु पाठक वर्ग में जागरुकता बनी रहनी चाहिए।

भाषा शुद्धता हेतु उपाय -

१) जहा तक संभव हो अपनी भाषा के शब्दों का प्रयोग करें। जहां आवश्यक हो, अंग्रेजी शब्दों का अनुवाद करते समय भारतीय भाषाओं का प्रयोग किया जाना चाहिए।

२) हस्ताक्षर अपनी भाषा में करें, घर की नाम पट्टिका भी हिन्दी में कर सकते हैं।

३) विवाह आदि समारोहों के निमन्त्रण पत्र अपनी भाषा में छपवायें।

४) मातृभाषाएँ सभी भाषाओं का आधार है। उसे विकसित कर किसी भी भाषा को सीखने का आधार तैयार किया जा सकता है।

५) अपनी मातृभाषा का उपयोग करने में संकोच या लज्जा का अनुभव न करें। भाषाएँ चाहें जितनी सीखें।

सद्‌गुण

देशभक्ति सभी सद्‌गुणों की जननी है।

१. **दृढ़ निश्चय**– हमें चाहिए कि सत्य के संस्कार से अनुप्राणित रहें, श्रेष्ठजनों के आदर्शों का परिपालन करें, अहिंसा व्रत धारण करें, मृदु व्यवहार रखें, परन्तु अपने मूल कार्य के प्रति दृढ़ निश्चय के साथ संलग्न रहें तभी सफलता की सीढ़ी आसानी से चढ़ सकते हैं।

२. **ईश भक्ति** – दैनिक जीवन में और विशेष अवसरों पर ईश भक्ति के रूप में देवाराधन किया जाता है। नवरात्र के अवसर पर दुर्गा पूजा, सप्तशती का पाठ, श्रावण में रुद्राभिषेक, श्रीमद्‌भागवत् सप्ताह आदि उपासनाएँ हैं। भगवत् प्राप्ति के निमित्त किये गये अनुष्ठान का अनन्त फल शास्त्रों में उल्लेखित है। शुद्ध चित्त से की गई ईश भक्ति ही सार्थक होती है। स्मरण रहे कि पूजा, पाठ, मंत्रजाप, अनुष्ठान आदि ईशभक्ति के साधन हैं, भक्ति इनसे प्राप्त होने वाला भाव है, इष्ट से तादात्म्य इसका फल है।

३. **धैर्य** – जीवन में कार्य करते समय अनेक बार ऐसे अवसर आते हैं जब हमारा भरोसा टूटने लगता है, तब हमें धैर्य को निरन्तर बनाए रखते हुए, अपने मनोभाव को सकारात्मक दिशा देते हुए कार्य को पूर्णता की ओर ले जाना चाहिए। धैर्यवान व्यक्ति जीवन में कभी असफल नहीं होते हैं।

४. **आत्मविश्वास**– व्यक्ति की सफलता के मूल आधार में आत्मविश्वास वह स्रोत है जो सकारात्मक ऊर्जा का संचार करता है और उसे सफलता के चरम बिन्दु तक ले जाता है। आत्मविश्वास वह कुंजी है जो हर कठिनाई रूपी ताले को खोलकर सफलता का मार्ग दिखाती है।

सन्तवाणी

भारतीय सन्त परम्परा में **सन्त रविदास जी** का विशेष स्थान है। आपने भक्ति, ज्ञान और समाज प्रबोधन के अनेक उपदेश अपनी रचनाओं में दिए हैं। उनमें से कुछ यहाँ प्रस्तुत हैं –

सन्तन के मन होत है, सबके हित की बात।
घट घट देखें अलख को, पूछें जात न पाँत।।
सत्य सनातन वेद है, ज्ञान धर्म मर्याद।
जो ना जाने वेद को, वृथा करे बकवाद।।
ब्राह्मन् खतरी बैस सूद, रविदास जन्म ते नाहिं।
जो चाहइ सुबरन कउ, पावइ करमन माहिं।।

सन्त रविदास

गीत

हमको अपने भारत की माटी से अनुपम प्यार है।

हमको अपने भारत की माटी से अनुपम प्यार है
अपना तन, मन, धन जीवन इस माटी का उपहार है
हमको अपने भारत की माटी से अनुपम प्यार है ।।ध्रु०।।

इस धरती पर जन्म लिया था, दशरथ नन्दन राम ने
इस धरती पर गीता गायी, यदुकुलभूषण श्याम ने
इस धरती के आगे झुकता मस्तक बारम्बार है।
हमको अपने भारत की माटी से अनुपम प्यार है ।।१।।

इस धरती की गौरवगाथा, गायी राजस्थान ने
इसे बनाया वीरों ने पावन अपने बलिदान से
मीरा के गीतों की इसमें छिपी हुई झंकार है।
हमको अपने भारत की माटी से अनुपम प्यार है ।।२।।

कण-कण मन्दिर इस माटी का, कण-कण में भगवान है
इस माटी से तिलक करो, यह अपना हिन्दुस्थान है।
इस माटी का रोम-रोम, भारत का पहरेदार है।
हमको अपने भारत की माटी से अनुपम प्यार है ।।३।।

भारतमाता

दशरथ नन्दन राम

यदुकुलभूषण श्याम

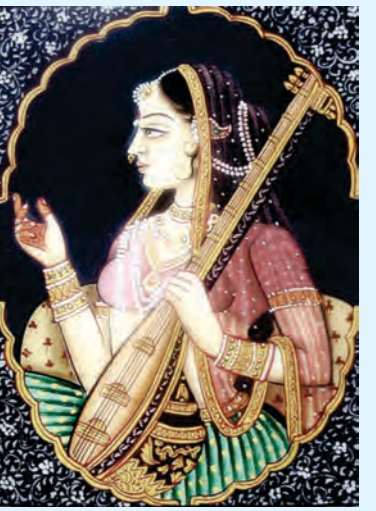

भक्तिमती मीराबाई

५. हमारी ज्ञान परम्परा

मैं सुनिश्चित हूँ कि खगोलशास्त्र, ज्योतिष, देहांतरण आदि सारा ज्ञान गंगा के तट से आया है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि कोई २५०० वर्ष पूर्व, पाइथागोरस निश्चित ही रेखागणित सीखने सामोस से गंगा गया था। किन्तु उसने यह कठिन और अनजान यात्रा कभी न की होती यदि यूरोप में भारत के ब्राह्मणों के विज्ञान की प्रतिभा की धाक वर्षों से न जमी होती।

– फ्रान्स्वा एम. वॉल्तेयर (फ्रांस)

भारतीय परम्परा से प्राप्त ज्ञान विश्व को भारत की देन है। 'भारतीय वैदिक ज्ञान' को महर्षियों ने अपने आचरण से आत्मसात् किया। हजारों वर्ष पहले वेदों में वैज्ञानिक तथ्य और विज्ञान के सूत्र दिये गए हैं। सुश्रुत को चिकित्सा शास्त्र का जनक कहा जाता है। तीसरी सदी में लिखी सुश्रुत संहिता में अनेक रोग तथा इनके उपचार का उल्लेख है। भारत में ही सबसे पहले मापने की प्रणाली का उपयोग हुआ था। भारत ने संख्या प्रणाली का आविष्कार किया। आर्यभट्ट ने शून्य के उपयोग का परिचय विश्व से कराया। विश्व का पहला विश्वविद्यालय ७०० ई॰पू॰ तक्षशिला में स्थापित हुआ जहाँ दुनिया भर से १० हजार ५०० छात्र ६० से अधिक विषयों का अध्ययन करते थे।

एकात्म मानव दर्शन

प्रत्येक देश एक विचार के आधार पर व्यवस्थाएँ व रचनाएँ खड़ी करता है। वह विचार और तदनुकूल व्यवहार ही उस देश की पहचान बन जाते हैं। भारत का भी अपना एक विचार है, जो आदिकाल से चला आ रहा है। विभिन्न कालखण्डों में उस विचार को हमारे मनीषियों ने विभिन्न नामों से जाना है। आधुनिककाल में उसी प्राचीन विचार को इस युग के अनुकूल बनाकर पं. दीनदयालजी उपाध्याय ने "एकात्म मानव दर्शन" नाम से प्रस्तुत किया है।

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय

पण्डित दीनदयाल जी जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न एवं मूल चिन्तक थे। बचपन में ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक बन गए थे। अपनी शिक्षा पूर्णकर गृहस्थी नहीं बसाई, संघ के प्रचारक बनकर राष्ट्रसेवा में लग गए। आगे चलकर उन्हें एक नवस्थापित राजनीतिक दल जनसंघ का दायित्व दिया गया जिसे उन्होंने राष्ट्र निर्माण के अनेक कार्यों में से एक मानकर विशुद्ध भावना से स्वीकार किया। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उन्होंने अपनी असाधारण संगठन-कुशलता के बलपर जनसंघ को मात्र पन्द्रह-सोलह वर्ष की अवधि में देश में द्वितीय क्रमांक का अखिल भारतीय दल बना दिया था। डॉ॰ श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने कहा था, "मुझे ऐसे दो दीनदयाल दे दीजिए, मैं सारे देश का स्वरूप बदल दूँगा।" महान देशभक्त थे दीनदयाल जी।

आपके लिए "एकात्म मानव दर्शन" शब्द नया है। इसलिए पहले हम इन तीनों शब्दों का निहितार्थ समझ लेते हैं:- इस सृष्टि का मूल, आत्मतत्त्व है। यह आत्मतत्त्व सम्पूर्ण सृष्टि के सभी पदार्थों में व्याप्त है। 'एकात्म' शब्द का अर्थ है, एक आत्मा अर्थात् जड़-चेतन सब में एक ही आत्मा का वास है। सभी प्राणियों में वही एक आत्मा है। अत:

आत्मिकस्तर पर चाहे भारतीय हो या किसी अन्य देश का निवासी, कोई भी भाषा बोलने वाला, कैसे भी वस्त्र पहनने या कैसा भी भोजन करने वाला, सभी एक हैं, अत: पण्डित दीनदयालजी ने सभी मानवों को एकात्म कहा।

एकात्मता इस जीवन को, जगत को और जगदीश्वर को तथा जगत के व्यवहारों को, जगत की व्यवस्थाओं को समझने का आधारभूत सिद्धान्त है, क्योंकि यह जगत स्वयं एकात्म है। सम्पूर्ण जगत उसी एक आत्मतत्त्व का विस्तार है। एकात्मता के सिद्धान्त और एकात्म व्यवस्था का अर्थ है कि इसमें अपनापन और आत्मीयता समाई हुई है। अपनापन और आत्मीयता का भावात्मक स्वरूप है प्रेम। इस प्रेम का क्रियात्मक स्वरूप है त्याग व सेवा। सेवा का मूल अर्थ है किसी के प्रति प्रेम से प्रेरित होकर उसका काम करना। सेवा का फल सदैव आनन्द ही होता है।

तीसरा शब्द है, दर्शन। दर्शन का अर्थ है देखना, जो देखा है वह, और जिसे देखा जा सकता है वह। यह दुनिया कैसी है, यह सृष्टि कैसी है, उसकी रचना कैसे हुई, उसका प्रयोजन क्या है, उसकी व्यवस्था कैसी है, उसकी रचना करने वाला कौन है? इस विश्व में मानव का स्थान क्या है और उसे इस विश्व के साथ कैसे समरस होना है? यह सब उस मानव को देखना है। भारत में जीव, जगत और जगदीश्वर से सम्बन्धित किसी भी प्रश्न का समाधान करने वाली विचारधारा को दर्शन कहा गया है।

हमारे यहाँ दर्शन शब्द का एक और भी सन्दर्भ है। भारत में अनेक विचारधाराएँ हैं। भारतीय तत्त्वज्ञान में मुख्यत: नौ दर्शन के नाम आते हैं। छ: आस्तिक दर्शन और तीन नास्तिक दर्शन। ये नौ दर्शन विचार के क्षेत्र में प्रतिष्ठित हैं। किन्तु एकात्ममानव दर्शन दसवाँ दर्शन नहीं है। यह विशेषकर वेदान्त दर्शन पर आधारित है। इसलिए दीनदयालजी ने भारतीय दर्शनों में जिसमें वेदान्त प्रमुख हों, उस सिद्धान्त को ही एकात्म मानव दर्शन कहा है।

श्रीरामचरितमानस प्रसंग

सन्तों ने अनुभवों के आधार पर बताया है कि भक्तिमार्ग से अपने इष्ट की प्राप्ति करना सरल है। भक्ति के लिए अनेक शास्त्रों का अध्ययन आवश्यक नहीं है। केवल भावों की निर्मलता और आस्था की दृढ़ता ही भक्ति है। श्रीरामचरितमानस में भगवान श्रीराम ने माता शबरी को नौ प्रकार की भक्ति बताई है –

शबरी माता

श्रीरामचरितमानस के अरण्यकाण्ड में नवधाभक्ति

चौपाई – जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥

जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता–इन सब के होने पर भी भक्ति से रहित मनुष्य कैसा लगता हैं, जैसे जलहीन बादल शोभाहीन दिखायी पड़ता है।

चौपाई –नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।

मैं तुमसे अब नवधा भक्ति कहता हूँ। सावधान होकर सुनो और मन में धारण करो। पहली भक्ति है संतों का सत्संग । दूसरी भक्ति है मेरे कथा–प्रसंग में प्रेम।।

दोहा- गुर पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान।

तीसरी भक्ति है अभिमानरहित होकर गुरु के चरणकमलों की सेवा और चौथी भक्ति है कपट छोड़कर मेरे गुण समूहों का गान करे।।

चौपाई - मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा।
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा।।

मेरे (राम) मन्त्र का जाप और मुझ में दृढ़ विश्वास-यह पाँचवीं भक्ति है, जो वेदों में प्रसिद्ध है। छठी भक्ति है इन्द्रियों का निग्रह, शील (अच्छा स्वभाव या चरित्र), बहुत कर्मों से वैराग्य और निरंतर संत पुरुषों के धर्म (आचरण) में लगे रहना।।

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा।।
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा।।

सातवीं भक्ति है जगत्भर को समभाव से मुझमें ओत प्रोत (राममय) देखना और संतों को मुझसे भी अधिक श्रेष्ठ मानना। आठवीं भक्ति है जो कुछ मिल जाय उसीमें संतोष करना और स्वप्न में भी दूसरों के दोषों को न देखना।

नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना।।
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई।।
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे। सकल प्रकार भक्ति दृढ़ तोरे।।

नवीं भक्ति है सरलता और सबके साथ कपटरहित बर्ताव करना, हृदय में मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था में हर्ष और दैन्य (विषाद) का न होना। इन नवों में से जिनके पास एक भी होती है, वह स्त्री-पुरुष, जड़-चेतन कोई भी हो, हे भामिनि! मुझे वही अतिप्रिय है, फिर तुझमें तो सभी प्रकार की भक्ति दृढ़ है।

श्रीमद्भगवद्गीता

यह घोषणा करने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं कि मानव के सभी धर्मों में गीता अत्यंत मौलिक कृति है। इसकी अवधारणा ही उदात्त है। इसकी तर्कपद्धति, इसकी शैली अद्वितीय है। – लॉर्ड वारेन हेस्टिंग्ज (इंग्लैण्ड)

भारतीय संस्कृति में तप का बहुत महत्त्व है। ऋषियों-मुनियों ने, यहाँ तक कि स्वयं भगवान् ने भी तप करके दिव्य गुण सामर्थ्य प्राप्त किए। किसी ध्येय प्राप्ति के लिए समस्त सुख-सुविधा-वासना त्याग कर, सारे कष्ट उठाकर भी लक्ष्य की साधना ही तप है। गीता में शारीरिक, मानसिक व वाचिक तपों का वर्णन है। आइये, उन्हें समझें -

उत्तम आचरणों की शिक्षा के लिए शारीरिक तप बतलाया गया है -

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।।१७/१४।।

देवता, ब्राह्मण, माता-पिता आदि गुरुजनों और ज्ञानीजनों का पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा-यह शरीर सम्बन्धी तप कहे जाते हैं।

आत्म बल साधन, केवल सिद्धान्त नहीं :

कर्त्तव्य कर्म को समझते हुए जीवन के लक्ष्य निर्धारित करने के उपरान्त उनके सफल कार्यान्वयन के लिए आत्म-बल की आवश्यकता होती है। श्री गीता जी में केवल सिद्धान्त नहीं हैं। श्रीकृष्ण सिद्धान्तों को सहजता से व्यवहार में लाने के लिए प्रायोगिक उपकरण के विषय में भी समझा रहे हैं। यहाँ दो उपकरणों का उल्लेख किया जा रहा है:-

१) अध्यात्म विद्या :

भगवान् ने स्वयं को **'अध्यात्म विद्या विद्यानां'** (१०/३२) 'विद्याओं में अध्यात्म विद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या हूँ' बता कर इसकी सर्वोच्चता प्रतिपादित की है एवम् श्रीमद्भगवद्गीता, जो अध्यात्म विद्या का अनूठा और सम्पूर्ण सद्ग्रन्थ है, हमें प्रदान किया है। मैं कौन? मैं ही यहाँ क्यों? जैसे प्रश्नों के उत्तर जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण बदल देते हैं। सकारात्मक ऊर्जा का संचार हर व्यक्ति में हर समय रहता है। विचलित क्षणों में यही ज्ञान-भान निरोधक का कार्य करता है। शरीर को भगवान् ने यन्त्र मात्र बताया है। यह विलक्षण विवेचन अनेक भ्रान्तियों को विराम देता है:-

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥१८/६१॥

अर्थात् हे अर्जुन! शरीर रूपी यन्त्र में आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से (उनके कर्मों के अनुसार) भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थित है।

२) प्राणायाम और ध्यान :

हमारे जीवन में प्राणायाम और ध्यान की विशेष महत्ता है। विद्यार्थी जीवन से ही यह दिनचर्या का अभिन्न अंग होना चाहिए। प्रतिदिन की प्रक्रिया से उस अनन्त व अक्षय शक्तिपुंज से सकारात्मक ऊर्जा प्राप्त करते हुए जीवन को अधिक उन्नत व प्रभावशाली बना सकते हैं। प्रश्न है कि ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से कैसे जुड़ें? जैसे, रेडियो/टीवी के जिस चैनल को सुनना/देखना होता है तो एक निर्दिष्ट रेडियो-तरंग से सम्पर्क स्थापित करना होता है। ठीक उसी तरह, उस अखण्ड ज्योति से जुड़ने के लिए निर्दिष्ट तरंग से ही जुड़ना होगा और वह है "०-शून्य-मौन"। 'मौन' रहना ध्यान की प्रथम आवश्यकता है।

श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में प्राणायाम और ध्यान की विधि पर विस्तार से बताया है। यहाँ तक बताया है कि आसन कैसा हो, बैठना कैसे है? इससे सम्बन्धित श्लोक स्वाध्याय व अपनाने के आशय से बताए जा रहे हैं –

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥
अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः॥अध्याय-४; श्लोक-२९,३०॥

कितने ही योगीजन अपानवायु में प्राणवायु को हवन करते हैं, वैसे ही अन्य योगीजन प्राणवायु में अपानवायु को हवन करते हैं तथा अन्य कितने ही नियमित आहार करने वाले प्राणायाम परायण पुरुष प्राण और अपान की गति को रोककर प्राणों को प्राणों में ही हवन किया करते हैं। ये सभी साधक यज्ञों द्वारा पापों का नाश कर देने वाले और यज्ञों को जानने वाले हैं।

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ॥

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।

विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः।।अध्याय-५; श्लोक-२७,२८।।

बाहर के विषय-भोगों को न चिन्तन करता हुआ बाहर ही निकलकर और नेत्रों की दृष्टि को भृकुटी के बीच में स्थित करके तथा नासिका में विचरने वाले प्राण और अपान वायु को सम करके, जिसकी इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि जीती हुई हैं, ऐसा जो मोक्षपरायण मुनि इच्छा, भय और क्रोध से रहित हो गया है, वह सदा मुक्त ही है।।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।

एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।।अ.६.श्लोक-१०।।

मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश में रखने वाला, आशारहित और सङ्ग्रहरहित योगी अकेला ही एकान्त स्थान में स्थित होकर आत्मा को निरन्तर परमात्मा में लगावे।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य सिरिमासनमात्मनः।

नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।।अ.६.श्लोक-११।।

शुद्ध भूमि में, जिसके ऊपर क्रमशः कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं, जो न बहुत ऊँचा है और न बहुत नीचा, ऐसे अपने आसन को स्थिर स्थापन करके;

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।

उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये।।अ.६.श्लोक-१२।।

उस आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करे।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।

सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।।अ.६.श्लोक-१३।।

काया, सिर और गले को समान एवं अचल धारण करके और स्थिर होकर, अपनी नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर, अन्य दिशाओं को न देखता हुआ;

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।

मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः।।अध्याय-६; श्लोक-१४।।

ब्रह्मचारी के व्रत में स्थित, भयरहित तथा भलीभाँति शान्त अन्तःकरण वाला सावधान योगी मन को रोककर मुझमें चित्तवाला और मेरे परायण होकर स्थित होवे।

उपर्युक्त का मुख्य आधार है : प्राणापानौ समौ कृत्वा (५/२७) प्राण और अपान वायु को सम करके। यहां भी परमात्मा ने 'समता' की ही बात की है।

विशेष तीन बिन्दु :

- इस प्रक्रिया के लिए बहुमूल्य भौतिक संसाधनों की कोई आवश्यकता नहीं है, शरीर रूपी यन्त्र ही पर्याप्त है।
- जब प्राणायाम और ध्यान की विधि से अक्षय-आनन्द के पथ पर अग्रसर हो सकते है तब जीवन के सामान्य चरणों में अकल्पनीय सहायता मिलने में हमारा पूरा विश्वास होना चाहिए। अत: संशय का कोई स्थान ही नहीं रहना चाहिए।
- ध्यानावस्था का सदुपयोग अच्छे संस्कारों, अच्छी आदतों का वरण करने में करना चाहिए।

प्राचीन गुरुकुल शिक्षा

वैदिक ज्ञान तक पहुँच – वर्तमान सदी के लिए सौभाग्य की बात है – आर्थर शॉपेनहवर (जर्मनी)

भारत प्राचीन काल से ज्ञानवान देश के रूप में विश्वविख्यात है। भारत का अर्थ ही 'ज्ञान की साधना में लगा रहने वाला' है। ज्ञान की दृष्टि से वेद विश्व में प्राचीनतम साहित्य है। उस पर आधारित भारत की शिक्षा भी विश्व में प्राचीनतम है।

वेदकालीन गुरुकुल शिक्षा

वैदिक काल, रामायण काल एवं महाभारत काल में हमारे देश की शिक्षा गुरुकुल नाम से प्रचलित थी। गुरुकुल जिस व्यवस्था में चलते थे, उसे आश्रम कहा जाता था। जैसे, वसिष्ठ का आश्रम, विश्वामित्र का आश्रम, अगस्त्य का आश्रम आदि। इन आश्रमों में ये ऋषि ब्रह्मचारियों को शिक्षा देते थे। ज्ञानार्जन करने वाला ब्रह्मचारी शिष्य कहलाता था एवं ज्ञान देने वाले ऋषि गुरु कहलाते थे। इन गुरुकुलों से ही गुरु-शिष्य परम्परा चली जो आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है। यहाँ हम कुछ प्रमुख गुरुकुलों की जानकारी लेकर अपने ज्ञान में वृद्धि करेंगे –

- **ब्रह्मर्षि वसिष्ठ आश्रम** – अयोध्या में स्थित राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चारों भाइयों की शिक्षा इसी आश्रम में हुई। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।

  प्रातकाल उठि के रघुनाथा। मात-पिता गुरु नाँवहिं माथा।
  गुरु गृह गये पढ़न रघुराई। अलपकाल विद्या सब आई।।

- **महर्षि विश्वामित्र आश्रम –** राम-लक्ष्मण यज्ञ की रक्षा के लिए इसी आश्रम में आये थे। उन्हें यहीं पर शस्त्र शिक्षा दी गई थी। विशेष आग्नेयास्त्रों का प्रशिक्षण उन्हें विश्वामित्र जी ने दिया था। अत्रि ऋषि, शृँगी ऋषि, मतंग ऋषि भी इसी आश्रम से जुड़े थे।
- **महर्षि अगस्त्य आश्रम** – यह आश्रम दण्डकारण्य में स्थित था। अरण्यकाण्ड में इसकी प्रशंसा की गई है। यहाँ देवता, किन्नर, गन्धर्व, सिद्ध भी शिक्षा पाते थे।
- **महर्षि भरद्वाज (प्रथम) आश्रम** – प्रयाग में स्थित यह एक सुरम्य आश्रम था। भरद्वाज स्वयं सदैव शिष्यों से घिरे रहते थे। शिष्यों के अध्ययन एवं आवास हेतु पर्णकुटियाँ थीं।
- **महर्षि परशुराम आश्रम** – यह आश्रम महेन्द्र पर्वत पर स्थित था। आचार्य द्रोण ने यहाँ शिक्षा पाई थी। परशुराम जी प्रयोग, रहस्य और उपसंहार विधि के शस्त्रास्त्रों की शिक्षा देते थे। राजा द्रुपद तथा कर्ण ने भी धनुर्विद्या की शिक्षा यहीं पाई थी।

- **महर्षि कण्व आश्रम** – यह आश्रम मालिनी नदी के तट पर स्थित था। यहाँ न्यायशास्त्र, मोक्षशास्त्र, तर्क, व्याकरण, छन्द, निरुक्त के प्रसिद्ध आचार्य थे। राजा दुष्यन्त-शकुन्तला के पुत्र भरत का जन्म इसी आश्रम में हुआ था।
- **ऋषि सन्दीपनि आश्रम** – यह आश्रम उज्जैन में स्थित था। बलराम-श्रीकृष्ण-सुदामा ने यहीं पर वेद और उपनिषदों की शिक्षा प्राप्त की थी।
- **महर्षि व्यास आश्रम** – यह आश्रम हिमालय में बदरीवन में स्थित था। सुमन्त, वैशम्पायन, जैमिनी व पेल ने वेदों की शिक्षा यहीं पर ली थी। यहाँ व्यास जी ने गणेश जी से महाभारत ग्रन्थ का लेखन कराया था।

गुरु-शिष्य परम्परा

यह परम्परा आध्यात्मिक प्रज्ञा को नई पीढ़ियों तक पहुँचाने का सोपान है। भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत गुरु अपने शिष्य को विद्या सिखाता है। बाद में वही शिष्य गुरु के रूप में दूसरों को शिक्षा देता है। यही क्रम चलता जाता है। यह परम्परा सनातन धर्म की सभी धाराओं में मिलती है। यह परम्परा ज्ञान के किसी भी क्षेत्र में हो सकती है जैसे- अध्यात्म, संगीत, कला, वेदाध्ययन, वास्तु आदि। भारतीय संस्कृति में गुरु का बहुत महत्त्व है। कहीं गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश कहा गया है तो कहीं गोविन्द।

प्राचीन गुरुकुल

गुरुकुल ऐसे विद्यालय थे जहाँ विद्यार्थी अपने परिवार से दूर गुरु के परिवार का हिस्सा बनकर शिक्षा प्राप्त करता था। प्राचीन भारत में गुरुकुल ही अध्ययन-अध्यापन के प्रधान केन्द्र हुआ करते थे। दूर-दूर से ब्रह्मचारी विद्यार्थी तथा सत्यान्वेषी परिव्राजक अपनी-अपनी शिक्षाओं को पूर्ण करने आते थे। प्रसिद्ध आचार्यों के गुरुकुल में पढ़े हुए विद्यार्थियों का सभी जगह सम्मान होता था। राम ने ऋषि वसिष्ठ व पाण्डवों ने ऋषि द्रोण के यहाँ रहकर शिक्षा प्राप्त की थी। गुरुकुलों में केवल पूजा-पाठ या कर्मकाण्ड नहीं सिखाया जाता था। हमारे ऋषि विज्ञान की विभिन्न विधाओं के विशेषज्ञ थे तथा अपने शिष्यों को शस्त्र-शास्त्र तथा जीवन के अनेक क्षेत्रों में पारंगत बनाते थे।

हमारा वांग्मय

हिन्दु वांग्मय परिचय : वांग्मय का अर्थ है लिखित साहित्य का संग्रह। इसके अन्तर्गत वेद, उपनिषद्, संहिता, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक ग्रन्थ और मीमांसाएँ आदि हैं।

- **वेद :** वेदों के अध्ययन द्वारा सामाजिक, राजनैतिक, भौगोलिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक सभी प्रकार के ज्ञान प्राप्त करना सम्भव है। भगवान वेदव्यास ने वेदों के ज्ञान को चार भागों में बाँटा –

१. ऋग्वेद | २. यजुर्वेद | ३. सामवेद | ४. अथर्ववेद

- **उपवेद :** उपवेद चार हैं :-

१. आयुर्वेद – यह ऋग्वेद का उपवेद है।
२. धनुर्वेद – यह यजुर्वेद का उपवेद है।
३. गान्धर्ववेद – यह सामवेद का उपवेद है।
४. शिल्पवेद – यह अथर्ववेद का उपवेद है।

महर्षि वेद व्यास

- **उपनिषद् :** उपनिषद् हिन्दू धर्म के महत्वपूर्ण श्रुति ग्रन्थ हैं। इनकी संख्या लगभग १०८ है किन्तु मुख्य उपनिषद ११ हैं।
- **वेदांग या सूत्र साहित्य :** वेदों के अर्थ ज्ञान समझने में सहायक शास्त्र को वेदांग कहा जाता है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द और निरुक्त–ये छह वेदांग हैं। "सूत्र का अर्थ कम शब्दों में बड़ी बात कह देना है।"
- **पुराण :** कुल १८ पुराण हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं –

  ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, वायुपुराण, भागवतपुराण, नारदपुराण, मार्कण्डेयपुराण, अग्निपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिंगपुराण, वाराहपुराण, स्कन्दपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुड़पुराण, ब्रह्माण्डपुराण।
- **स्मृतियाँ :** प्रमुख स्मृति ग्रन्थों के रचनाकार ये ऋषि थे – मनु, याज्ञवल्क्य, पराशर आपस्तम्ब, नारद, अभि, विष्णु, हारीत, औषनासी, बृहस्पति, व्यास, दक्ष, गौतम, वसिष्ठ, संवर्त, शंख, गार्गेय, देवल, शरतातय और शतानप स्मृति।
- **दर्शन :** भारतीय दर्शन का आरम्भ वेदों से होता है। 'वेद' भारतीय धर्म–दर्शन, संस्कृति, साहित्य आदि के मूल स्रोत हैं। छः दर्शन प्रसिद्ध और प्राचीन हैं – वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त।
- **रामायण :**(संस्कृत : रामायणम् = राम+अयणम्) शाब्दिक अर्थ : राम का घर। वाल्मीकि द्वारा रचित संस्कृत महाकाव्य है जिसमें श्रीराम के जीवन की गाथा है। इसे 'आदि काव्य' तथा इसके रचयिता महर्षि वाल्मीकि को आदिकवि कहा जाता है। इसमें सात अध्याय हैं जो काण्ड के नाम से जाने जाते हैं। कुल २४,००० श्लोक हैं।
- **महाभारतः** हिन्दू मान्यताओं, पौराणिक सन्दर्भों एवं स्वयं महाभारत के अनुसार इस काव्य के रचनाकार वेदव्यास जी हैं। वेदव्यास जी ने अपने इस काव्य में वेदों, वेदांगों और उपनिषदों के गुह्यतम रहस्यों का सरल निरूपण किया है। यह महाकाव्य 'जय संहिता, भारत और महाभारत', इन तीन नामों से प्रसिद्ध हैं। श्लोकों की संख्या १ लाख है।
- **जैन आगम :** आगम शब्द का प्रयोग जैन धर्म के मूल ग्रन्थों के लिए किया जाता है। कैवल्य ज्ञानी, मनपर्यय ज्ञानी, अवधि ज्ञानी, चतुर्दशपूर्व के धारक तथा दशपूर्व के धारक मुनियों को आगम कहा जाता है।
- **त्रिपिटक :** त्रिपिटक बौद्ध धर्म का प्रमुख प्राचीनतम ग्रन्थ है, जिसमें भगवान बुद्ध के उपदेश संग्रहित हैं। यह ग्रन्थ पाली भाषा में लिखा गया है और विभिन्न भाषाओं में अनूदित है। पिटक अर्थात् 'पेटी' या संग्रह। तीन संख्या में होने के कारण इन्हें त्रिपिटक कहा गया।
- **गुरु ग्रन्थ साहिब :** यह केवल धार्मिक ग्रन्थ ही नहीं, सिख धर्म का अन्तिम और जीवित गुरु भी माना जाता है। दसवें गुरु, गुरु गोविन्द सिंह ने वर्ष १७०८ में अपनी मृत्यु से पहले घोषणा कर दी थी कि उनके बाद कोई व्यक्ति गुरु नहीं होगा और गुरु ग्रन्थ साहिब ही सदैव गुरु गद्दी पर विराजमान होंगे।

आध्यात्मिक चेतना

आध्यात्मिकता, धर्म का सूक्ष्म एवं चैतन्यमय रूप होता है। आध्यात्मिक चेतना का अर्थ है यह बोध होना कि इस सृष्टि का सत्य अपदार्थ है। चेतना के तीन स्तर हैं – चेतन, अवचेतन, अचेतन। इसकी चार अवस्थाएँ – देखना, सुनना, अनुभव करना, विचार व निर्णय करना है। अध्यात्म का मूल उद्देश्य– जीवन में प्रेम, शान्ति, आनन्द और विवेक की शक्ति प्रदान करना है।

अध्यात्म ईश्वरीय आनन्द की अनुभूति करने का मार्ग है। इसके तीन प्रकार हैं – १. भक्ति, २. योग समाधि और ३. ज्ञान समाधि।

- **जीवन दर्शन :** कुछ लोगों का मानना है कि जीवन का उद्देश्य आनन्द और पूर्णता पाना है जबकि जीवन का अर्थ उच्च उद्देश्य की पूर्ति तथा संसार को श्रेष्ठ स्थान बनाना है।
- **जीवन शैली :** भारतीय जीवन शैली त्याग पर आधारित है। सादा जीवन उच्च विचार को जीवन में चरितार्थ होते हुए देखा जा सकता है। संयमपूर्ण जीवन, कथनी-करनी में एकता, प्रकृति के प्रति प्रेम, सभी प्राणियों में एकात्म भावना, भारतीय जीवन शैली की विशेषताएँ हैं। अतिथि देवोभव, परोपकार एवं बन्धुत्व भारतीय जीवन शैली के अभिन्न अंग हैं।
- **कण-कण में भगवान : 'सीय राममय सब जग जानी, करउँ प्रणाम जोरि जुग पानी'** भारतीय दर्शन के अनुसार सृष्टि के कण-कण में ईश्वर की सत्ता विद्यमान है। 'सर्वं खलुं इदम् ब्रह्म' अर्थात् दृश्य अदृश्य जो भी सृष्टि में विद्यमान है वह सभी ईश्वर के ही स्वरूप हैं। 'जीव-जगत-जगदीश्वर' के प्रति दृष्टि भारतीय संस्कृति का प्रतिमान है।
- **धर्म :** जो धारण किया जाए, वह धर्म है। प्रकृति के संचालन में धर्म का स्वरूप दिखाई पड़ता है जैसे अग्नि का धर्म है 'दाहकता' जल का धर्म है 'शीतलता'। इसी प्रकार मानव का धर्म है मानवता। मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण बताए गए हैं –

  धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
  धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ।

  भगवान श्रीराम को धर्म का साक्षात् स्वरूप कहा गया है – **रामो विग्रहवान धर्मः ।** उनमें धर्म के समस्त लक्षण, उत्तम प्रकार से चरितार्थ होते हैं।
- **कर्मफल सिद्धान्त :** श्रेष्ठ कर्म करने का सभी ग्रन्थों में आग्रह किया गया है। कर्म के दो प्रकार हैं : सकाम कर्म, निष्काम कर्म। कहा गया है –

  कर्म प्रधान बिश्व करि राखा।
  जो जस करइ सो तस फल चाखा।।

  गीता में कर्म के तीन प्रकार बताए गए हैं – कर्म, विकर्म, अकर्म। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा "कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्"। हमें श्रेष्ठ कर्म करते हुए फल की कामना नहीं करनी चाहिए।
- **पुनर्जन्म :** भारतीय दर्शन में मान्यता है कि मृत्यु के पश्चात् शरीर का अन्त होता है, आत्मा का नहीं। आत्मा अजर, अमर, अविनाशी है। कर्मों के अनुसार जब तक मोक्ष की प्राप्ति न हो तब तक आत्मा नए शरीर को धारण कर पुनर्जन्म लेती है। ये आवागमन तब तक चलता रहता है जब तक मोक्ष की प्राप्ति न हो। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है **''बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुनः।** अर्थात् हे अर्जुन, मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं। पुनर्जन्म का सिद्धान्त भारत का दर्शन है जबकि विश्व के अन्य देशों में मृत्यु के साथ ही जीवन का अस्तित्व समाप्त होने की मान्यता है।

६. हमारी वैज्ञानिक परम्परा

विश्व के महान धर्मों का लगभग चालीस वर्षों के अध्ययन पश्चात मुझे एक भी धर्म ऐसा नहीं मिला जो इतना पूर्ण, इतना विज्ञान संगत, इतना दर्शन से पूर्ण और इतना आध्यात्मिक हो। जितना यह महान धर्म है जिसे हिन्दू धर्म की संज्ञा दी जाती है।

– एनी वुड बेसेन्ट (आयरिश लेखक)

भारतीय शास्त्रों में विज्ञान

भारतीय विज्ञान की परम्परा विश्व की प्राचीनतम वैज्ञानिक परम्पराओं में से एक है। भारत में विज्ञान का उद्‌भव कब हुआ। हड़प्पा तथा मोहन-जो-दड़ो की खुदाई से प्राप्त सिन्धु घाटी के प्रमाणों से वहाँ के निवासियों की वैज्ञानिक दृष्टि तथा वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोग का पता चलता है।

भारत में वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन-अनुसंधान की परम्परा प्राचीन काल से चली आयी है। भृगु, वसिष्ठ, भरद्वाज, अत्रि, गर्ग, शौनक, शुक्र, विश्वामित्र, नारद, चक्रायण, ढुण्डीनाथ, नदीश, कश्यप, अगस्त्य, परशुराम, द्रोण, दीर्घतमस आदि ऋषियों ने विमान विद्या, नक्षत्र विज्ञान, रसायन विज्ञान, अस्त्र-शस्त्र रचना, जहाज निर्माण और जीवन के सभी क्षेत्रों में काम किया।

उदाहरण के लिए, भृगु शिल्प शास्त्र की परिभाषा करते हुए जो लिखते हैं, उससे ज्ञान की परिधि कितनी व्यापक थी, इसकी कल्पना मिलती है –

नानाविधानां वस्तूनां यन्त्राणां कल्पसम्पदा।
धातूनां साधनानां च वास्तूनां शिल्पसंज्ञितम्॥
कृषिर्जलं खनिश्चेति धातुखण्डं त्रिधाभिधम्॥
नौका-रथाग्नियानानां, कृतिसाधनमुच्यते।
वेश्म, प्राकार, नगररचना वास्तु संज्ञितम्॥ (भृगु संहिता-३)

उपरोक्त श्लोक में भृगु ऋषि दस शास्त्रों का उल्लेख करते हैं - (१) कृषिशास्त्र (२) जलशास्त्र (३) खनिज शास्त्र (४) नौका शास्त्र (५) रथ शास्त्र (६) अग्नियान शास्त्र (७) वेश्म शास्त्र (८) प्राकार शास्त्र (९) नगर रचना (१०) यंत्र शास्त्र।

विभिन्न ग्रंथों में १८ प्रकार की विद्या और ६४ प्रकार की कलाओं का उल्लेख आता है। इसमें धातु विज्ञान, वस्त्रशास्त्र, चिकित्सा विज्ञान, कृषि विज्ञान, बाँध बनाना, वनरोपणी, युद्ध शास्त्र, पुल बनाना, मुद्रा शास्त्र, नौका, रथ, विमान, नगर रचना, गृह निर्माण आदि। कलात्मक स्थापत्य कला के अनुरूप बने प्राचीन मन्दिर भारतीय शिल्प योजना के उदाहरण हैं। उनकी एक विशेष शैली होती थी, जैसे सौराष्ट्र में सोमपुरा शैली। ये शिल्पी एक कुल की भांति रहते थे। कोई धार्मिक व्यक्ति भक्ति भावना से मन्दिर का निर्माण करना चाहता तो ये शिल्पी वहाँ जाकर अन्त:करण की भक्ति से, पूजा भाव के साथ मन्दिर निर्माण कार्य करते थे। उनकी श्रेष्ठ कला के नमूने देश के विभिन्न स्थानों पर दिखाई देते हैं। एलोरा के मन्दिर जिनमें सभी भाग निर्दोष और कलापूर्ण हैं। इस मन्दिर की लम्बाई १४२ फीट, चौड़ाई ६२ फीट और ऊँचाई १०० फीट है। इस पर पौराणिक दृश्य उत्कीर्ण हैं।

भुवनेश्वर का लिंगराज मन्दिर, मध्य प्रदेश में खजुराहो के मन्दिर, गुजरात में गिरनार के मन्दिर, दक्षिण भारत में श्रीरंगपट्टम् के मन्दिर, रामेश्वरम् का मन्दिर, मदुरै का मीनाक्षी मन्दिर आदि भारतीय शिल्प कला के अद्भुत उदाहरण हैं। बिना यंत्र ज्ञान के इतने बड़े भवनों का निर्माण सम्भव ही नहीं होता, जो सैकड़ों वर्ष से खड़े हैं।

भारत के पुरातन परमाणु वैज्ञानिक महर्षि कणाद वैशेषिक दर्शन के १०वें अध्याय में कहते हैं –

'दृष्टानां दृष्ट प्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोगोऽश्युयाय'

अर्थात् प्रत्यक्ष देखे हुए और अन्य को दिखाने के उद्देश्य से अथवा स्वयं और अधिक गहराई से ज्ञान प्राप्त करने का हेतु रखकर किये गये प्रयोगों से अभ्युदय का मार्ग प्रशस्त होता है। इसी प्रकार सामान्य कण से लेकर ब्रह्माण्ड और उसका प्रायोजन जानने के लिए महर्षि गौतम न्याय दर्शन में सोलह चरण की प्रक्रिया बताते हैं – प्रमेय अर्थात् जिसे जानना है। प्रमाण अर्थात् वे साधन जिससे जानने का प्रयत्न करते हैं। संशय अर्थात् जिसके कारण जाँच पड़ताल की जाती है। समाधान सब अंगों का अलग-अलग जानना अवयव कहलाता है। उसके बाद प्रतिज्ञा अर्थात् परिकल्पनाएँ (हाइपोथिसिस) रखी जाती हैं, उदाहरण आदि के माध्यम से सत्य तक पहुँचने का प्रयत्न किया जाता है।

विज्ञान में, किसी लेखक के विचारों का उसके क्षेत्र से सम्बन्ध को परिभाषित करने के लिए साहित्य में परम्परा का प्रयोग किया जाता है। आर्यभट्ट के बाद छठी शताब्दी में वराहमिहिर नाम के खगोल वैज्ञानिक विज्ञान के इतिहास में प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने कहा कि कोई ऐसी शक्ति है, जो वस्तुओं को धरातल से बाँधे रखती है।

प्राचीनकाल में चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में चरक और सुश्रुत, खगोल विज्ञान व गणित के क्षेत्र में आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त और आर्यभट्ट द्वितीय और रसायन विज्ञान में नागार्जुन की खोजों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इनकी खोजों का प्रयोग आज भी किसी-न-किसी रूप में हो रहा है।

आज विज्ञान का स्वरूप अत्यधिक विकसित हो चुका है। पूरी दुनिया में तेजी से वैज्ञानिक खोजें हो रही हैं। इन आधुनिक वैज्ञानिक खोजों की दौड़ में भारत के जगदीशचन्द्र बसु, प्रफुल्लचन्द्र राय, सी.वी. रमण, सत्येन्द्रनाथ बोस, मेघनाद साहा, श्रीनिवास रामानुजन्, हरगोबिन्द खुराना आदि का योगदान पढ़ने को मिलता है।

खगोल विज्ञान (Astrology)

खगोल विज्ञान को वेद का नेत्र कहा गया है क्योंकि सम्पूर्ण सृष्टि में होने वाले व्यवहार का निर्धारण काल से होता है। खगोल विज्ञान वेदांग है। ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में नक्षत्र, चान्द्रमास, सौरमास, मलमास, ऋतु परिवर्तन, उत्तरायन-दक्षिणायन, आकाश चक्र, सूर्य की महिमा, कल्पमास आदि के सन्दर्भ में अनेक उल्लेख मिलते हैं।

भारतीय ज्योतिषशास्त्र

बारह राशियाँ

ज्योतिष शास्त्र का मूलाधार सूर्य है। प्रत्यक्षतः नक्षत्रों की गति एवं उनके सृष्टि पर प्रभाव का अनुसंधान कर जिस शास्त्र का निर्माण हुआ, वह ज्योतिष शास्त्र कहलाया। पूर्णतः वैज्ञानिक रीति से अवलोकन एवं अध्ययन के कारण इसे ज्योतिर्विज्ञान भी कहा गया। **'प्रत्यक्षं ज्योतिषंशास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ'** के अनुसार जिन सूर्य व चन्द्रमा की गति ज्योतिष शास्त्र का आधार बनी वह प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। इसलिए ज्योतिष शास्त्र को प्रत्यक्ष शास्त्र भी कहा जाता है।

आकाश में सूर्य चन्द्र तथा विविध ग्रहों का भ्रमण करने का मार्ग १८०°-२००° का चौड़ा पथ है जो पूर्व से पश्चिम दिशा तक फैला है। यह ग्रह मार्ग कहलाता है। यह वलयाकार है अर्थात् ३६०° में बाँटा गया है। इसे बारह भागों में विभाजित कर बारह राशियों के नाम से जाना जाता है। इन बारह राशियों का विस्तार एक समान नहीं है। वह मूल बिन्दु जिससे पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर राशियों का क्रम आरम्भ होता है मीन राशि का एक तारा है। नक्षत्र भी इसी बिन्दु से आरम्भ होते हैं जिनकी संख्या २७ है। इस प्रकार एक ही ग्रह पथ पर स्थित होने से एक राशि के अंश में २$\frac{१}{४}$ नक्षत्र आते हैं। इनमें दो नक्षत्र व शेष चौथाई भाग चरण कहलाता है। १२ राशियों के नामकरण का आधार उनकी आकृतियाँ है, यथा –

आकाश में सूर्य-चन्द्र तथा विविध ग्रह

१. मेष – भेड़ के सदृश आकृति।
२. वृष – बैल की आकृति।
३. मिथुन – स्त्री-पुरुष के जोड़े की आकृति।
४. कर्क – केकड़े की आकृति।
५. सिंह – शेर की आकृति।
६. कन्या – हाथ में दीपक लिए नौका पर सवार कन्या की आकृति।
७. तुला – तराजू लिए पुरुष जैसी आकृति।
८. वृश्चिक – बिच्छू के समान आकृति।
९. धनु – धनुष लिए पुरुष के समान आकृति जिसका कमर के नीचे का भाग घोड़े जैसा है।
१०. मकर – मगर के समान आकृति।
११. कुंभ – कन्धे पर घड़ा लिए पुरुष जैसी आकृति।
१२. मीन – मुँह व पूँछ से जुड़ी दो मछलियों जैसी आकृति।

ध्यान देने योग्य बात है कि सभी देशों में इनकी संख्या व नाम अपनी-अपनी भाषा में एक समान ही हैं।

इन राशियों में जन्म लेने वाले, अर्थात् जिस राशि में किसी के जन्म लेने के समय चन्द्रमा होता है, उस राशि के मान से उस मानव (जातक) के गुण-धर्म-स्वभाव पाए जाते हैं। हम प्रायः अनेक सञ्चार माध्यमों में राशिफल पढ़ते-सुनते हैं, उनका भी आधार यही है।

भारतीय कालगणना

जिस समय तक पश्चिम यह सोच रहा था कि शायद ब्रह्माण्ड ६००० वर्ष पुराना है उससे पहले ही भारत उसकी आयु युगों में आंक रहा था। भारत जानता था कि आकाशगंगाओं की संख्या इतनी है जितने कि गंगा के तट पर फैले रेत के कण। ब्रह्माण्ड इतना विस्तृत है कि आधुनिक खगोल विज्ञान उसकी तहों में बिना कोई विशेष मानसिक उद्वेग उत्पन्न किये, खो जाता है। **– ह्यूस्टन स्मिथ (अमेरिका)**

आज का विज्ञान भी पृथ्वी की आयु लगभग दो अरब वर्ष बताता है और हमारी कालगणना सृष्टि की आयु एक अरब सत्तानबे करोड़ उन्तीस लाख उन्चास हजार एक सौ चौबीस वर्ष बाती है, जो विज्ञान की गणना से प्राय: मेल खाती है। हमें अपनी कालगणना पर पूर्ण विश्वास तथा गर्व करना चाहिए।

आपने कालगणना में छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी इकाई को जाना है। अब हम यह समझेंगे कि अब तक हमारी सृष्टि कितने वर्ष की हुई है?

भारतीय कालगणना

हम कितने वर्ष के हुए हैं –

१. हम यह तो जानते हैं कि सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्मा जी हैं। परन्तु यह नहीं जानते कि एक ब्रह्मा कितनी बार सृष्टि की रचना करते हैं। आओ, जानें –

ब्रह्मा का दिन शुरू होता है तब सृष्टि का सृजन होता है। ब्रह्मा का दिन पूरा होकर रात्रि शुरू होती है तब सृष्टि का प्रलय होता है। ब्रह्मा की आयु १०० वर्ष की होती है। १ वर्ष के ३६० दिन होते हैं। ब्रह्मा की आयु ३६० x १०० = ३६,००० (छत्तीस हजार) दिन की होती है। अर्थात् १ ब्रह्मा ३६,००० बार सृष्टि का सृजन करते हैं और ३६,००० बार सृष्टि का प्रलय होता है।

२. वर्तमान में ब्रह्मा की आयु के ५० वर्ष अर्थात् १ परार्द्ध पूर्ण होकर दूसरा परार्द्ध चल रहा है। दूसरे परार्द्ध का छब्बीसवां दिन चल रहा है। इस दिन की १३ घटी ४२ पल ३ विपल ४३ प्रतिविपल बीत चुके हैं। इस दिन का नाम श्वेतवाराह कल्प है।

३. हम श्वेतवाराह कल्प में जी रहे हैं। इस कल्प में १४ मन्वन्तर होते हैं। वर्तमान में ६ मन्वन्तर बीत चुके हैं। अब सातवां मन्वन्तर चल रहा है। इस मन्वन्तर का नाम वैवस्वत मन्वन्तर है।

भारतीय विद्याएँ

मुख्य विद्याएँ

जिनको जानने से संसार में जीवन अभ्युदय प्राप्त करता है, श्रेष्ठ बनता है, उन्नति, सौभाग्य और सफलता को प्राप्त कर नि:श्रेयस् अर्थात् मुक्ति भी पा लेता है, वह ज्ञान विद्या कहलाता है। अर्थात् इस लोक और परलोक, दोनों को मंगलमय बनाने का ज्ञान 'विद्या' है। इनका मूल स्रोत वेद हैं।

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिता:।
वेदा:स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश:॥

याज्ञवल्क्य स्मृति के इस श्लोक के अनुसार चार वेद, छ: वेदांग, पुराण साहित्य, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र ये चौदह विद्या के प्रमुख स्रोत हैं। इन्हें ही चौदह विद्या के नाम से जाना है। विद्या दो प्रकारों की कही गई है – परा और अपरा। अपरा अर्थात् संसार में उत्कर्ष देने वाली और परा यानि मोक्ष दिलाने वाली।

विष्णु पुराण और अन्य कुछ ग्रन्थों में विद्याओं की संख्या १८ बताई गई है। वे उपरोक्त चौदह विद्याओं के अतिरिक्त आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थवेद को जोड़कर अठारह संख्या मानते हैं।

१. ऋग्वेद

यह संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ है। वेद भारतीय संस्कृति के आधार ग्रन्थ हैं इनमें भी ऋक् वेद (ऋग्वेद) सर्वाधिक प्राचीन है। वेद अपौरुषेय और स्वत:प्रमाण हैं। ऋग्वेद में अग्नि, इन्द्र व सोम आदि वैदिक देवताओं की प्रसन्नता के लिए किए जाने वाली गायत्री, जगती, त्रिष्टुप आदि छन्दों में निबद्ध स्तुतियाँ हैं। ऋग्वेद की २१ शाखाएँ हैं। इसमें ४० अध्याय हैं। ऐतरेय और शांखायन, ये दो इसके ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। इनमें होतृकर्म का वर्णन है। आयुर्वेद इसका उपवेद है। जो चिकित्सा विषयक है।

२. यजुर्वेद

यजु: वेद (यजुर्वेद) यज्ञ प्रधान है। देवताओं के लिए द्रव्य त्यागना यज्ञ है। यह गद्यात्मक अधिक है। इसकी ८६ शाखाएँ हैं। कृष्ण और शुक्ल नामक इसकी दो धाराएँ हैं। शुक्ल यजुर्वेद में केवल मन्त्र और कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्र और ब्राह्मण दोनों हैं। धनुर्वेद इसका उपवेद है। यह सैनिक शिक्षा विषयक है।

३. सामवेद

सामवेद गीतात्मक मन्त्रों का संकलन है। वैसे तो वेद स्वयं ही भगवान माने गए है इसमें भी श्रीमद्भगवद्गीता में सामवेद को भगवान श्रीकृष्ण ने 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' अर्थात् वेदों में सामवेद मैं ही हूँ, कहकर अपनी विभूति बताया है। इसकी वेदों में सर्वाधिक १००० शाखाएँ हैं। इसका उपवेद गान्धर्व वेद है जो संगीतादि से सम्बन्धित है।

४. अथर्ववेद

आदिवेद ऋग्वेद को ही तीन भागों में व्यवस्थित करने से ऋक्, यजु:, साम – ये तीन वेद बने जो वेदत्रयी कहलाए। बाद में अथर्वा, अंगिरस और भृगु ऋषियों ने इन तीन वेदों का एक परिशिष्ट या पूरक वेद बनाया जो अथर्ववेद कहलाया और वेदों की संख्या चार हो गई। अथर्ववेद की १०० शाखाएँ हैं। इसका उपवेद है स्थापत्य वेद जो भौतिक संसाधनों, यंत्रों, भवन निर्माण आदि से सम्बन्धित है।

७. हमारा गौरवशाली अतीत

आदिकाल से अखिल विश्व को, देती जीवन यही धरा।
गौरवशाली परम्परा।।

युग परिचय

युग परिचय- युग शब्द का अर्थ होता है, एक निर्धारित संख्या के वर्षों की काल-अवधि। चारों युगों का वर्णन निम्नानुसार है -

सतयुग - यह प्रथम युग है। इसका तीर्थ पुष्कर है। इस युग में पुण्य की मात्रा १००% होती है तथा पाप की मात्रा ०% होती है। इस युग के अवतार मत्स्य, कूर्म, वाराह तथा नृसिंह हैं। अवतार होने का कारण शंखासुर, हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु का वध, वेदों का उद्धार, पृथ्वी का भार हरण एवं प्रह्लाद को सुख देना। इस युग की मुद्रा रत्नमय तथा पात्र स्वर्ण के हैं। इस युग की अवधि १७,२८,००० वर्ष है।

त्रेतायुग -यह द्वितीय युग है। इसका प्रमुख तीर्थ नैमिषारण्य है। इसमें पुण्य ७५% और पाप २५% होता है। प्रमुख अवतार वामन, परशुराम और श्रीराम होने के कारण बलि का उद्धार, मदान्ध क्षत्रियों का संहार, रावण वध और देवों को बन्धन मुक्त कराना। इस युग की मुद्रा स्वर्ण है तथा पात्र चाँदी के हैं। इस युग की अवधि १२,९६,००० वर्ष है।

द्वापर युग- यह तृतीय युग है। इसका तीर्थ कुरुक्षेत्र है। इसमें पुण्य की मात्रा ५०% तथा पाप की मात्रा भी ५०% होती है। इस युग के अवतार श्रीकृष्ण और अवतार का कारण कंस, शिशुपाल, जरासंध आदि दुष्टों का संहार। इस युग की मुद्रा चाँदी तथा पात्र-ताम्र के हैं। इस युग की अवधि ८,६४,००० वर्ष है।

कलियुग- यह चतुर्थ युग है। इसका प्रमुख तीर्थ गंगा है। इसमें पुण्य की मात्रा २५% तथा पाप की मात्रा ७५% होती है। इस युग की मुद्रा लोहा तथा पात्र मिट्टी के हैं। इस युग की अवधि ४,३२,००० वर्ष है।

प्रलय और सृजन के साथ निरन्तर चलते कालचक्र की अवधि के बृहद् परिमाणों में 'युग' महत्त्वपूर्ण इकाई है। उपर्युक्त वर्णन देखें तो सतयुग से कलियुग तक के कालचक्र में पुण्य यानि सद्गुण, सद्भाव, सदाचरण का भाग घटता और समृद्धि क्षीण होती दिखती है। लेकिन कलियुग सबसे छोटा है इसलिए यह सिद्ध होता है कि मानव अच्छाई में ही अधिक देर तक व अधिक आनन्द से रह सकता है। अपनी आयु में हम जितना अधिक सदाचारी बनकर जी सकें, सतयुग का ही अनुभव होगा। कलियुग के बाद सतयुग आता है इसलिए 'हम बदलेंगे युग बदलेगा' का सूत्र अपने जीवन में विचार व आचार में चरितार्थ करना चाहिए।

वास्तु कला (Architecture)

मोहन जो-दड़ो में नगर नियोजन - ३००० ई॰पू॰ यह वैज्ञानिक ढंग से नियोजित नगर था। आम रास्ते को उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम में तथा लम्बवत् काटती सीधी गलियों की रचना थी। भवन गारे व चूने से बनाये गये थे। उस काल में ईंटों से भवन निर्माण कला में भारतीय पूर्णरूपेण अनुभवी थे।

मोहन-जो- दड़ो का विशाल सार्वजनिक स्नानगृह की लम्बाई, चौड़ाई (पूर्व से पश्चिम) व गहराई क्रमशः ११.८९, ७.०१ व २.४४ मीटर है।

लोथल सौराष्ट्र २५०० ई॰ पू॰ - प्रतिष्ठित नगर लोथल में आवासीय भू-खण्ड, दुर्ग, अन्नागार, बाजार, विशाल सार्वजनिक स्नानगृह और कई अन्य सार्वजनिक भवन योजनाबद्ध तरीके से बनाये गये थे। लोथल का कृत्रिम बन्दरगाह अभियांत्रिकी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की प्रगति में एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। यहाँ का ढका हुआ जल निकास तन्त्र प्राचीन विश्व में एक अद्वितीय उदाहरण था। लोथल की मल विसर्जन व्यवस्था अद्वितीय थी।

मोटेरा (उत्तर गुजरात) का सूर्य मन्दिर (ग्यारहवीं सदी), पाटन (उत्तर गुजरात) में रानी की वाव (ग्यारहवीं सदी), ताल वास्तु कला (सौराष्ट्र), सैन्य एवं आवासीय वास्तुकला - चित्तौड़गढ़ का किला भारतीय वास्तुकला के अनुपम उदाहरण हैं।

वर्तमान युग में अयोध्या में श्रीरामजन्मभूमि पर निर्मित श्रीरामलला के भव्य मंदिर का निर्माण इस प्रकार किया गया है कि इसकी स्थिरता एक हजार वर्ष आँकी गई है।

मराठा साम्राज्य

परकीय मुगल शासनकाल में उनका प्रतिकार करने के लिए मराठा साम्राज्य का उत्कर्ष एक गौरवशाली गाथा है जिसने मुगल शासन को लगभग शक्तिहीन ही कर दिया। छत्रपति शिवाजी महाराज राष्ट्रधर्म के जीवंत स्वरूप थे। तत्कालीन विषम परिस्थितियों में हिन्दवी स्वराज्य (हिन्दू साम्राज्य) की स्थापना करके उन्होंने अतुलनीय कार्य किया। शिवाजी को अपने पिताजी शाहजी भोंसले से पूना की जागीर मिली थी जिससे प्रारम्भ करते हुए शिवाजी ने मराठा राज्य का विस्तार किया। सर्वप्रथम उन्होंने १६४४ ई॰ में बीजापुर के तोरण दुर्ग पर अधिकार किया। १६५६ ई॰ में उन्होंने रायगढ़ (महाराष्ट्र) को अपनी राजधानी बनाया। १६६५ ई॰ में बीजापुर के सेनापति अफजल खाँ को मार गिराया। १६७२ ई॰ में शिवाजी ने पन्हालगढ़ दुर्ग भी जीत लिया। ५ जून १६७४ ई॰ को शिवाजी ने रायगढ़ में अपना राज्याभिषेक करवाया और हिन्दू पदपादशाही की घोषणा की। शिवाजी के उत्तराधिकारी शम्भाजी बने। शम्भाजी के पुत्र शाहूजी के समय मराठा साम्राज्य में पेशवा अथवा प्रधानमन्त्री का प्रभाव बढ़ने लगा। उनका पद भी वंशानुगत हो गया। साहूजी के समय १७१३ ई॰ में बालाजी विश्वनाथ पेशवा बने।

दिल्ली पर आक्रमण करने वाले पेशवा बाजीराव प्रथम थे जिन्होंने मुगल बादशाह मुहम्मदशाह को दिल्ली छोड़ने के लिए विवश कर दिया था। इसके बाद बालाजी बाजीराव पेशवा बने। १७६१ में पानीपत के तृतीय युद्ध में उन्होंने ही मुस्लिम आक्रमणकारियों का भीषण प्रतिकार किया। पेशवा माधवराव ने मुगल बादशाह को मराठों का पेंशनभोगी बना दिया था। अंग्रेजों को भी तीन संघर्षपूर्ण युद्धों में मराठा शक्ति ने भारी हानि पहुँचायी।

वन्देमातरम् की गौरव गाथा

१४ अगस्त १९४७ की अर्द्धरात्रि के समय जब भारत स्वतंत्र हुआ, तो स्वागत में श्रीमती सुचेता कृपलानी ने 'वन्दे मातरम्' गाया था और सभी उपस्थितजन ने खड़े होकर प्रसन्नतापूर्वक सुना था। दूसरे दिन प्रातःकाल आकाशवाणी से भारत के महान् गायक पण्डित ओंकारनाथ ठाकुर ने सम्पूर्ण 'वन्दे मातरम्' का गान अपने हृदयद्रावी रोमांचक अंदाज में भारतीय स्वतंत्रता के स्वर्णिम विहान से मुक्त विहंग की भाँति पूरे उल्लास के साथ किया था। यहाँ हम वन्दे मातरम् की गौरव गाथा पढ़ेंगे।

दिरूपार कुमारन्

तमिलनाडु का दिरूपार कुमारन् हाथ में राष्ट्रध्वज पकड़े 'वन्देमातरम्' घोष के साथ आगे बढ़ रहा था। उस पर पुलिस ने निर्मम लाठीचार्ज किया। बहादुर बच्चे ने 'वन्देमातरम्' घोष के साथ अपने प्राण त्याग दिए। ऐसे वीर बालकों के नाम भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में सदा लिखे रहेंगे।

तिरुनेलवेली जिले के जिलाधीश बिंच ने चिदम्बरम् पिल्लै को 'वन्देमातरम्' बोलने के कारण बहुत अपमानित किया था। सुब्रह्मण्य भारती की कविता में पिल्लै की भावना उद्घाटित है-'हमें क्या डर? यह हमारा देश है। इसमें ब्रिटिशों का क्या है? प्रभु हमारा साथ देंगे। अपने जीवन की अंतिम साँस तक हम 'वन्देमातरम्' गीत गाएँगे। माता को शीश झुकाएँगे। 'वन्देमातरम्'।

१९१० में धोतियों की किनारी पर लिखा रहता था - 'माँ! मैं आपसे विदा ले रहा हूँ। होठों पर मधु मुस्कान रखते हुए मैं फाँसी के तख्ते पर चढ़ूँगा। मेरे बान्धव इसके साक्षी रहेंगे। बम एक दो लोगों की जान ले सकते हैं। ऐसे हजारों घरों में बम हैं। हे माँ! हम आपकी संतान बम जैसी ही हैं न! माँ! गरीब बेचारे क्या करेंगे? हम अपने प्राण तेरे लिए अर्पण कर देंगे।' उस समय घर-घर की दीवारों पर भी 'वन्देमातरम्' लिखा रहता था।

चिदम्बरम् पिल्लै

ब्रिटिश एम.जी. के.आर.हार्डी १९०७ में भारत के प्रवास पर था। स्थान स्थान पर 'वन्देमातरम्' से उसका स्वागत हुआ। परिणामस्वरूप वे अपने भाषण के अन्त में 'वन्देमातरम्' कहने लगे। बारिसाल की एक महिला ने उन्हें 'वन्देमातरम्' लिखा हुआ चाँदी का तमगा तथा उनकी पत्नी को कुंकुम रखने की चाँदी की मंजूषा उपहार में दी। के.आर.हार्डी जहाज से तूतीकोरन से कोलम्बो गए। जाने से पूर्व अपना हैट उठाकर 'वन्देमातरम्' कहकर विदा ली। ऐसा था 'वन्देमातरम्' के साथ स्वागत का मन पर प्रभाव।

'वन्देमातरम्' क्रान्तिकारी आन्दोलन का मुखपत्र था। 'वन्देमातरम्' वह युद्ध घोष था जिसके कारण समर्पित उग्र क्रान्तिकारियों

की शृंखला खड़ी हुई। असंख्य हुतात्मा 'वन्देमातरम्' के लेखों से तैयार हुए। इस पत्र की साहसपूर्ण वृत्ति, सशक्त विचारधारा, स्पष्टभाव, शुद्ध और सबल शब्द चयन, झुलसता हुआ व्यंग्य, परिष्कृत मजाक उच्चस्तरीय था। भारत की पत्रकारिता के इतिहास में यह एकमेव ऐसा पत्र था जिसने लोगों का मन क्रान्ति के लिए तैयार किया। सरकार ने २९ अक्तूबर १९०८ को 'वन्देमातरम्' पत्र पर प्रतिबन्ध लगाकर प्रतियाँ जब्त कर ली थीं। फिर रोस्टरडम में मादाम कामा और अन्य क्रान्तिकारियों ने 'वन्देमातरम्' पत्र लाला हरदयाल के सम्पादकत्व में प्रारम्भ किया। प्रथम अंक में ही उन्होंने लिखा – 'विदेशियों के विरोध में जो युद्ध बंगाल के शूर और बुद्धिमान नेताओं ने 'वन्देमातरम्' के माध्यम से प्रारम्भ किया, हम अपनी पूरी शक्ति से जारी रखेंगे।' इसका प्रथम अंक १९०९ को जिनेवा से प्रकाशित हुआ। इस प्रकार पत्रकारिता के क्षेत्र में भी 'वन्देमातरम्' राष्ट्रीयता का स्पन्दन बना।

हल्दी घाटी के कणों में व्याप्त वन्दे मातरम्।
दिव्य जौहर ज्वाल का है तेज वन्दे मातरम्॥

हमारे राष्ट्र नायक

हूण विजेता राजा यशोधर्मन् (यशोधर्मा)

छठी शताब्दी के प्रारम्भ में मगध के सिंहासन पर एक अयोग्य राजा परगुप्त आसीन था। इस कारण अन्य राजे-महाराजे उसका आधिपत्य अस्वीकार कर स्वतन्त्र राज्य चलाने लगे। भारतीय राज्यों में सर्वत्र हूणों का आतंक छाया हुआ था। उज्जयिनी में, जहाँ विक्रमादित्य का सिंहासन था, वहाँ भी हूण राजा मिहिरकुल आरूढ़ था। अकेले उस पर आक्रमण करने का साहस किसी में नहीं था।

ऐसी विकट परिस्थिति में हूणों की सत्ता का निर्मूलन करने की प्रतिज्ञा करने वाला एक पराक्रमी वीर यशोधर्मा आगे आया। वह मालवा प्रदेश का एक छोटा सा राजा था परन्तु उसका साहस और राष्ट्राभिमान हूणों के 'राजाधिराज मिहिरकुल' को सिंहासन से उतार कर हूणों का अन्त करने वाला था।

यशोधर्मा ने सर्वप्रथम आस पास के स्वतन्त्र भारतीय राज्यों को संगठित किया। संगठित शक्ति के बल पर संयुक्त युद्ध की योजना बनाई। उन राजाओं ने यशोधर्मा के नेतृत्व में हूणों के विरुद्ध चारों ओर से एक साथ आक्रमण किया। सेनापति यशोधर्मा ने मिहिरकुल पर आक्रमण किया। यह भयंकर युद्ध ईस्वी सन् ५२८ में मन्दसौर में हुआ था जिसमें यशोधर्मा ने मिहिरकुल को जीवित बन्दी बना लिया था।

हूण राजा मिहिरकुल के पराभव के पश्चात यशोधर्मा ने पंचनद प्रदेश से हूणों का मूलोच्छेद कर दिया। पंचनद को स्वतन्त्र कर और भारतीय राजसत्ता का स्थायी प्रबन्ध कर यशोधर्मा अपनी विजयी सेना के साथ मालवा लौटा। अब वे 'महाराजाधिराज' बन गये थे। इस विजय की स्मृति में उन्होंने दो कीर्ति स्तम्भों का निर्माण भी करवाया।

ईस्वी सन् ५४० में मिहिरकुल की मृत्यु के पश्चात् सिन्धु के उस पार जो थोड़े से हूण बचे थे, वे भी धीरे-धीरे समाप्त हो गये। इस महत्त्वपूर्ण विजय के सम्बन्ध में डॉ. जायसवाल लिखते हैं, 'हिन्दुराष्ट्र के साथ लगभग सौ वर्षों तक

चलने वाले इस महासंग्राम में हूणों का जो प्रचण्ड संहार हुआ, उसके परिणामस्वरूप उनका संख्या बल बहुत घट गया। जो थोड़े से हूण बचे थे उन्होंने भारतीयता स्वीकार कर ली और एक-दो पीढ़ी में ही भारतीय समाज में इतने समरस हो गये कि उनमें हूणत्व का कोई चिह्न ही शेष नहीं रहा।'

हूणों पर यशोधर्मा द्वारा प्राप्त की गई इस निर्णायक विजय के दूरगामी परिणामों को बताते हुए विन्सेंट स्मिथ लिखते हैं, 'राजा यशोधर्मा द्वारा मिहिरकुल का-पराभव करने के बाद वक्षु नदी के पार भी हूणों की राजसत्ता का अन्त हो गया। उसके बाद लगभग ५०० वर्षों अर्थात् ग्यारहवीं शताब्दी तक पारियात्र पर्वत (हिन्दुकुश पर्वत) से गन्धार, कश्मीर, पंजाब व सिन्ध से लेकर कन्याकुमारी तक अखण्ड भारत में सर्वत्र वैदिक हिन्दुओं के स्वतन्त्र राज्य रहे।'

धन्य हैं, भारत माँ के यशोधर्मा समान सपूत।

प्रेरक बालवीर

वीर बाला कनकलता और मुकुन्द

स्वतन्त्रता मिलने के पाँच वर्ष पूर्व के वातावरण में सरकारी भवनों पर तिरंगा फहराना, वन्देमातरम् का घोष लगाना, जुलूस के आयोजनों से देश में राष्ट्रीय चेतना की गंगा बह रही थी। सारा देश अंग्रेजों को भगाने के लिए कमर कस चुका था। इस वातावरण से बच्चे भी प्रभावित हो रहे थे। "अरे! सुना तुमने? कल गोहपुर थाने पर तिरंगा फहराया जाएगा।" सोलह वर्ष की कनक ने अपने सहपाठी मुकुन्द को बताया। "हाँ, सारा गाँव जानता है यह तो" उसने उत्तर दिया। "तो क्या हमें अपने देश के लिए कुछ नहीं करना है? कनक ने प्रश्न पूछा। "हम भी साथ चलें?" साथी ने पूछा। "नहीं! मैं समझती हूँ कि हमें बच्चों की टोली बनाकर अलग से जुलूस निकालना चाहिए। पता नहीं, बड़े अपने साथ हमें रखें न रखें। वे समझते हैं कि हम छोटे हैं, आन्दोलन में खतरा है। हम उल्टे मुसीबत में न पड़ जाएँ।'' दोनों मित्रों ने अलग जुलूस की योजना की। कनक उसी गाँव के श्रीकृष्णकान्त बरुआ की बेटी थी। २० अगस्त १९४२ को राजकुँवर ज्योति प्रसाद की अगुवाई में गोहपुर की कोतवाली पर तिरंगा फहराने की योजना बनी। विशाल जनसमुदाय राष्ट्रीयता बोधक नारों के साथ आगे बढ़ रहा था। कनकलता बरुआ के नेतृत्व में छात्रों का एक समूह इसमें आ मिला। अब आगे-आगे बाल सेना, पीछे सारा गाँव सशस्त्र अंग्रेज पुलिस से घिरा थाना सामने था। कनकलता के कण्ठ से कड़क आह्वान् गूँजा "अंग्रेजी झण्डा हटाकर तिरंगा लहरा दो।" पुलिस ने चेतावनी दी। कनक और मुकुन्द ने वन्देमातरम् का घोष लगाया। सब ने उसी जोश से गगनभेदी घोष दोहराया। बौखलायी पुलिस की गोलियाँ दनादन बरस पड़ीं। कनकलता की देह से रक्त के फुव्वारे फूट पड़े। वह गिरने को हुई तो मुकुन्द ने तिरंगा थाम लिया। सोलह वर्ष का वह किशोर थाने की दीवार पर चढ़ गया। उसने यूनियन जैक को फाड़कर तिरंगा लहराकर भारत माता का जयघोष किया। अंग्रेजी गोलियों से रक्त स्नान करता वह बालवीर धरती पर आ गिरा। कनक की साँसें चल रहीं थीं। मुकुन्द ने उसकी ओर देखा और दोनों ने तिरंगे पर दृष्टि जमा दी। उनके मुखों पर खिली मुस्कान कह रही थी - 'काम हो गया।'

हम पर थोपे गये युद्ध

भारत-पाक युद्ध (१९७१)

पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान में चल रहे राजनैतिक संघर्ष के कारण पूर्वी पाकिस्तान से बड़ी संख्या में पीड़ित शरणार्थी भारत आने लगे तो भारत सरकार ने पाकिस्तान को अपना घर ठीक रखने और अवैध घुसपैठ बन्द कराने को कहा। ३ दिसम्बर १९७१ को पाकिस्तान ने अकारण ही भारत के सीमावर्ती एयरबेस पर हवाई हमले शुरू कर दिये, जिनका पाकिस्तान को मुँहतोड़ उत्तर दिया गया। जनरल मानेक शॉ की कुशल रणनीति के परिणामस्वरूप पूर्वी पाकिस्तान में मौजूद पाकिस्तानी सेना के कमाण्डर जनरल नियाजी ने ९३,००० पाकिस्तानी सैनिकों के साथ १६ दिसम्बर १९७१ को भारत के जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। युद्ध के परिणामस्वरूप पूर्वी पाकिस्तान बांग्ला देश के नाम से नया देश बना।

जनरल आमिर अब्दुल्ला खान नियाजी आत्म-समर्पण के दस्तावेज पर हस्ताक्षर करते हुए। साथ में हैं जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा।

आदर्श शिष्य

सत्य था सेवा से रिझाया, 'सत्यकाम' ने भी,
राम ने भी गुरु को प्रमोद पहुँचाया है।
'कौत्स' ने, 'उत्तंक' ने, अनेक राव-रंक ने भी
गुरु-चरणों में प्रेम परम बढ़ाया है।
विधि-हरि-हरकी उपाधि जिनको है मिली,
जीव में जिन्होंने ज्ञान-ज्योति को जगाया है,
उन गुरुदेव को प्रणाम है हमारा नित्य
जिनका महत्त्व श्रुतियों ने सदा गाया है।

८. हमारी संस्कृति का विश्व संचार

''भारत विश्व का आदि देश है, वह सबकी जननी है। भारत मनुष्य जाति की जननी और हमारी समस्त परम्पराओं का जन्मस्थान है।''

– फ्रान्सीसी विद्वान् जैकालियट

योग

"यम नियमासनप्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावङ्गानि''॥

योग का सामान्य अर्थ जोड़ या मिलाना होता है। ऋषि पतञ्जलि ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'योगसूत्र' में लिखा, "योग: चित्तवृत्ति निरोध:" योग चित्तवृत्ति को नियन्त्रित करने वाला है। गीता में कहा गया "योग: कर्मसु कौशलम्" योग किसी कार्य को कुशलता से करना है। नियमित योग हमारे शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। योग के आठ अंग हैं इसीलिए इसे अष्टांग योग कहते हैं। ये आठ अंग इस प्रकार हैं – (१) यम (२) नियम (३) आसन (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार (६) धारणा (७) ध्यान (८) समाधि।

१. **यम – अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा:।**

अर्थ – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह यम हैं।

(अ) अहिंसा – मन-वचन-कर्म से किसी प्राणी को न सताना अहिंसा है।

(आ) सत्य – जिस व्यवहार या वार्तालाप से सबका हित हो वह सत्य है। झूठ न बोलना भी सत्य है।

(इ) अस्तेय – चोरी न करना। दूसरों की वस्तु को उनसे अनुमति लिए बिना न लेना, उपयोग न करना।

(ई) ब्रहमचर्य – इन्द्रियों का संयम ब्रह्मचर्य है।

(उ) अपरिग्रह – संग्रह न करना। जितना आवश्यक हो, उतना ही लेना।

२. **नियम – शौच संतोष तप: स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानिनियमा:।**

अर्थ – शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय व ईवर प्रणिधान नियम हैं।

(अ) शौच – पवित्रता, स्वच्छता। शरीर और मन दोनों की स्वच्छता और पवित्रता।

(आ) संतोष – प्रसन्नता, आनन्द या दु:ख, कष्ट जैसी भली या बुरी दोनों स्थितियों में समान रहना। अधिक प्राप्ति पर प्रसन्न न होना, कम मिला तो दुखी न होना। 'तुल्य निन्दा स्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन-केनचित' स्तुति, निन्दा दोनों में समभाव रखना।

(इ) तप – भूख-प्यास, कष्ट व हर परिस्थिति को सहन करना। विचलित न होते हुए कार्य करना।

(ई) स्वाध्याय – नित्य अध्ययन करना। पठन-पाठन करना। ज्ञान प्राप्त करना।

(उ) ईश्वर प्रणिधान – अपने द्वारा किये गये कर्मों को ईश्वर को सौंपना। उसका फल ईश्वर को अर्पण करते जाना। श्रेय न लेना। कर्म – बुद्धि, वाणी और शरीर से होते हैं।

संगीत की भारतीय परम्परा

भारतीय संगीत की उत्पत्ति आदिनाद ओंकार से प्रकट सप्तस्वरों पर आधारित है। नाद सृष्टि का मूल कहा जाता है। अग्नि व वायु तत्त्व के मेल से नाद की उत्पत्ति विद्वान भी मानते हैं।

संगीतशास्त्र के विशेषज्ञ माण्डुक ऋषि ने संगीत के सात स्वरों को प्रकृति में निम्नांकित सात प्राणियों से ग्रहण किया –

षडज (सा) मोर, ऋषभ (रे) गाय

गन्धार (ग) बकरा, मध्यम (म) क्रौंच पक्षी

पंचम (प) कोयल, धैवत (ध) घोड़ा और निषाद (नि) हाथी।

देवर्षि नारद ने ऋषभ की उत्पत्ति चातक से मानी है। शेष छः स्वर माण्डुक मत से ही उत्पन्न माने हैं। देवर्षि नारद का संगीत ग्रन्थ 'स्वर मकरन्द प्रकाश' है।

स्वरों के उत्पत्ति स्थान –

षडज	नाक, गला, तालु, हृदय, जीभ और दाँत। इन छह अंगों के सहयोग से उच्चारित होने से षडज कहलाता है।
ऋषभ	नाभि और कण्ठ से उठ कर कण्ठ के ऊपरी भाग को छूते हुए जो निकलता है, वह ऋषभ है।
गन्धार	नाभि, हृदय, कण्ठ से ऊपर उठता हुआ जो नाक से निकलता है वह गन्धार है।
मध्यम	नाभि से हृदय तक गुंजित होकर प्रकट होने वाला स्वर मध्य भाग से उत्पन्न होने के कारण मध्यम कहलाता है।
पंचम	नाभि, हृदय के मध्य कण्ठ और उसके शीर्ष भाग तक जाकर प्रकट स्वर पञ्चम कहलाता है।
धैवत	नाभि केन्द्र से उठकर नाक से निकलने वाला स्वर है धैवत।
निषाद	समस्त स्वरों में सबसे तीव्र स्वर निषाद है।

मतंग और नारद आदि ऋषियों के मतानुसार –

'सा' के देवता ब्रह्मा, ऋषि प्रजापति–दक्ष और वर्ण कमल जैसा है।

'रे' के देवता अग्नि, ऋषि अत्रि व वर्ण तोते जैसा है।

'ग' की देवता सरस्वती, ऋषि कपिल एवं वर्ण सुनहरा है।

'म' के देवता शिव, ऋषि वसिष्ठ तथा वर्ण शुभ्र है।

'प' के देवता विष्णु, ऋषि शुक्र एवं वर्ण श्याम है।

'ध' के देवता गणेश, ऋषि नारद व वर्ण पीला है।

'नि' के देवता सूर्य, ऋषि तुम्बरु और वर्ण सतरंगी है।

महर्षि नारद

किस स्वर के कौन से देवता हैं, यह मतंग ऋषि ने तथा ऋषि कौन से हैं, यह नारद मुनि के संगीत ग्रन्थों में वर्णन है।

साहित्य के नवरसों के प्रभाव को कौन से स्वर प्रमुखता से बढ़ाते हैं यह भी संगीतशास्त्र में बताया गया है।

जैसे – शृँगार रस एवं हास्य रस – मध्यम व पंचम

रौद्र, अद्‌भुत व वीर रस – षडज व धैवत

शान्त व करुण रस – गन्धार व निषाद

वीभत्स व भयानक रस – धैवत

संगीत शास्त्र अत्यन्त गहन है। सामवेद के उपवेद के रूप में इसे मान्य किया गया है। जीवन पर संगीत के विविध प्रभावों को अनुभव एवं अनुसंधान करके इसे जीवन के आधारभूत विषय के रूप में माना गया। स्वरों के उत्पत्ति स्थान देवता, ऋषि, वर्ण, रस आदि सुनिश्चित करने हेतु पूर्वज ऋषियों ने जीवन के विविध पक्षों पर स्वरों के प्रभावों को अनुभव करके ही यह ज्ञान प्राप्त किया होगा। इससे सिद्ध होता है कि संगीत केवल मनोरंजन न होकर जीवनव्यापी प्रभावकारी साधना है।

भारत की विश्व को देन

जब नील नदी के क्षेत्र मिस्र में पिरामिडों को बने हुए थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ था, युनान व इटली में जो आधुनिक सभ्यता के आगार माने जाते हैं; उस समय भारतवर्ष सर्वसम्पन्न और सभ्यता के पूर्ण शिखर पर आसीन हो चुका था। **– डॉ॰ थोर्टन**

आयुर्वेद

धर्म अर्थ काम मोक्षाणाम् आरोग्यं मूलम् उत्तमम्।

अर्थात् चारों पुरुषार्थ – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के मूल में आरोग्य ही है।

आयुर्वेद प्राचीन चिकित्सा विज्ञान है जो लगभग ५ हजार वर्षों से भारत में प्रचलित है। यह शब्द संस्कृत के शब्द आयु (जीवन) और वेद (ज्ञान) से बना है। आयुर्वेद या आयुर्वेदिक चिकित्सा को कई सदियों पहले ही वेदों और पुराणों में प्रलेखित किया गया था। आयुर्वेद वर्षों में विकसित हुआ और अब योग सहित अन्य पारम्परिक चिकित्सा प्रथाओं के साथ एकीकृत है। ९०% से अधिक भारतीय आयुर्वेद चिकित्सा के किसी न किसी रूप का उपयोग आज भी करते हैं। आयुर्वेद तीन मूल प्रकार के ऊर्जा या कार्यात्मक सिद्धान्तों की पहचान क्रिया है जो हर किसी में है। इसे त्रिदोष सिद्धान्त कहते हैं। जब ये तीनों दोष–वात, पित्त और कफ सन्तुलित रहते हैं तो शरीर स्वस्थ रहता है। आयुर्वेद के सिद्धान्त मूल शरीर विज्ञान से सम्बन्धित होते हैं। चिकित्साशास्त्र के जनक आचार्य चरक द्वारा रचित 'चरक संहिता' आयुर्वेद का विश्वकोश है।

परम विद्वान आचार्य चरक ने शरीर संरचना, भ्रूण निर्माण व विकास भेषज विज्ञान, रक्त संचार आदि के बारे में विस्तार से तथ्यपूर्ण जानकारी प्रस्तुत की। चरक संहिता में नाड़ी परीक्षण द्वारा रोगों के निदान का अति उत्तम वर्णन है। चरक संहिता में १ लाख जड़ी बूटियों की गुणवत्ता एवम् कार्यप्रणाली दी गई है।

सुश्रुत शल्य चिकित्सा के पिता माने जाते हैं। सुश्रुत ने १२५ प्रकार के शल्य उपकरणों से ३०० प्रकार के शल्य कर्म की व्याख्या की है। टाँके लगाने की अनेक विधियों का प्रयोग सुश्रुत ने बताया है। पेड़ की छाल एवम् घोड़े के बालों का धागे के रूप में टाँका लगाने में प्रयोग का भी वर्णन मिलता है।

चिकित्सा प्रणाली की जड़ें पूरे अखण्ड भारत अर्थात भारतीय उपमहाद्वीप में हैं। भारत, नेपाल और श्रीलंका में आयुर्वेद का अधिक प्रचलन है। वहाँ लगभग ८०% जनसंख्या इसका उपयोग करती है। आयुर्वेद से मिलता–जुलता शब्द आयुर्विज्ञान, विज्ञान की वह शाखा है जिसका सम्बन्ध मानव शरीर को निरोग रखने, रोग हो जाने पर रोग से मुक्त करने

अथवा उसका शमन करने तथा आयु बढ़ाने से है। आयुर्वेद को त्रिस्कन्ध अथवा त्रिसूत्र कहा जाता है। यह त्रिसूत्र है- हेतु, लिंग, औषध। इसी प्रकार सम्पूर्ण आयुर्वेदीय चिकित्सा के आठ अंग माने गए हैं। (अष्टांग वैद्यक), ये आठ अंग हैं - काय चिकित्सा, शल्यतन्त्र, शालाक्यतन्त्र, कौमारभृत्य, अगदतंत्र, भूतविद्या, रसायनतन्त्र और बाजीकरण।

वैदिक गणित

गोवर्धन पीठ के शंकराचार्य पूज्य भारतीकृष्ण तीर्थ द्वारा लिखित वैदिक गणित आज सम्पूर्ण विश्व की गणित की जटिलताओं का सरल पद्धति से समाधान करने के लिए मार्ग प्रशस्त कर रही है। स्वर्गीय शंकराचार्य ने वैदिक गणित की तुलनात्मक तथा आलोचनात्मक व्याख्या कर वैदिक ज्ञान के लिए इस विधि की आवश्यकता को स्पष्ट किया। वैदिक गणित में १६ सूत्र हैं जिनकी सहायता से ऐसे प्रश्न जिनको हल करने में घण्टों का समय लगता था, उन्हें सेकण्डों में हल किया जाता है। विश्व के कई विश्वविद्यालयों में इस विषय को स्वीकृति मिली है। प्रत्येक विषय के वैदिक गणितीय सूत्र का सामान्यतया, सामान्य प्रश्न पर अनुप्रयोग हो सकता है।

गणित की सभी शाखाओं पर अनुप्रयोग करते हुए विद्यार्थियों को वैदिक गणित का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम पूरा करने के लिए औसतन २ या ३ घण्टे प्रतिदिन के हिसाब से कोई ८ या १२ माह लगते हैं जबकि प्रचलित भारतीय या विदेशी विश्वविद्यालयों की पद्धति से कोई १५ या २० वर्ष लगते हैं।

शून्य का अविष्कार

प्रकृति एवं ईश्वर द्वारा प्रदत्त विकसित मस्तिष्क एवं वाणी के उपहार के कारण मनुष्य अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ है एवं उनका नेतृत्व-नियन्त्रण करता है। अपनी कल्पनाशक्ति एवं दूरदर्शिता के कारण, वस्तुओं का संग्रह एवं उनकी गणना करने की वृत्ति मानव में सदैव से रही है। प्रारम्भिक समय में केवल प्राकृतिक संख्याओं का गणना में प्रयोग होने से गणना कठिन व सीमित थी, किन्तु शून्य के आविष्कार के बाद गणना एवं गणित का क्षेत्र व्यापक हो गया।

शून्य का स्वतन्त्र अर्थ व परिमाण 'नगण्य' होता है किन्तु शून्य का उपयोग किसी संख्या के आगे करने पर उसका मान १० गुणा बढ़ जाता है। शून्य का संख्या के आगे उत्तरोत्तर प्रयोग करने पर उसके मान में १० गुणा क्रम में गुणोत्तर वृद्धि होती है।

भारत में शून्य की परिकल्पना वैदिक काल से ही साक्ष्य के रूप में मिलती हैं, क्योंकि संसार या ब्रह्माण्ड की उपमा शून्य से की गई थी। ईसा से १४०० वर्ष पूर्व भारत में रचित ग्रन्थ वेदांग ज्योतिष में शून्य के प्रयोग एवं दाशमिक संख्या पद्धति के साक्ष्य मिलते हैं। वर्ष के १२ चन्द्रमास, १२ राशियों एवं वर्ष के ३६६ दिनों का उल्लेख शून्य के प्रयोग बिना सम्भव नहीं थे।

आर्यभट्ट ने (४७६ ई. से ५५० ई.) अपने ग्रन्थ आर्यभट्टीय में, गणितपाद-२ मे एक से लेकर अरब तक की संख्याओं को लिखा है। शून्य के प्रयोग के साथ उन्होंने लिखा है, ''स्थानात स्थानं दशगुणं स्यात्।'' अर्थात् प्रत्येक अगली संख्या, पिछली संख्या से दस गुना है। शून्य का आविष्कारक आर्यभट्ट को माना जाता है। शून्य की प्रामाणिक विवेचना ईस्वी सन ६२९ में ब्रह्मगुप्त द्वारा रचित ग्रन्थ 'ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त' में की गयी है।

पाश्चात्य विद्वान डी. एक्जेल, कम्बोडिया देश में ईसा पूर्व ५०० वीं शताब्दी के प्राप्त कुछ साक्ष्य व शिलालेखों के आधार पर मानते हैं कि शून्य का आविष्कार भारत में हुआ। २५०० वर्ष पूर्व बुद्ध के समकालीन बौद्ध भिक्षु विमलकीर्ति और मंजू के बीच हुआ संवाद शून्य को लेकर ही था जोकि बताता है कि भारत में शून्य का प्रयोग विश्व में सबसे पहले हुआ।

विश्वव्यापिनी भारतीय संस्कृति

सारे जग में व्याप्त हुई जो सबके हित शुभकारी है।
ऐसी पावन भारत संस्कृति जगसिरमौर हमारी है।।

सारे विश्व से जो पुरातात्त्विक प्रमाण मिलते हैं, उनसे सिद्ध होता है कि भारतीय संस्कृति विश्व के हर कोने में फैली हुई थी। जापान, न्यूजीलैण्ड, यूरोप, अफ्रीका अथवा अमेरिकी प्रायद्वीप, भारतीय और उनकी संस्कृति पहुँची। संस्कृतियों का मेल-जोल हुआ। वह सर्वव्यापी हो गई। बदलते परिवेश में भी भारत की प्राचीन संस्कृति अब तक बची है। विदेशी आक्रान्ताओं की लूटपाट और भारी विध्वन्स भी उसे नष्ट नहीं कर पाए। मिस्र, मेसोपोटामिया, यूनान, रोम, अमेरिका अथवा चीन की आधुनिक संस्कृतियों में उनकी प्राचीन संस्कृतियों के अवशेष बहुत कम मिलते हैं। वर्तमान में विश्व सौहार्द्र और सामंजस्य के संकट से जूझ रहा है। आतंक और हिंसा का दावानल है। सदियों पूर्व भारतीय संस्कृति ने सौहार्द्र तथा भाईचारे को सहजता से प्राप्त कर लिया था।

इण्डोनेशिया – हजारों साल बाद भी भारतीय संस्कृति का जीवन्त रूप देखना हो तो इण्डोनेशिया जाना चाहिए। नैसर्गिक सौन्दर्य से भरपूर विशिष्ट संस्कृति वाला इण्डोनेशिया पर्यटकों को आकर्षित करता है। न केवल इण्डोनेशिया ने अपने को भारत की अमर सनातन संस्कृति से जोड़ा बल्कि उसे समृद्ध बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बदलते विश्व परिदृश्य में भारत-इण्डोनेशिया की सामरिक मित्रता बढ़ते व्यापारिक रिश्तों के साथ-साथ एशिया में इण्डोनेशिया- भारत की बढ़ती भूमिका और दक्षिण-पूर्व प्रशान्त क्षेत्र में विश्व शान्ति की स्थापना में दोनों देशों की सांझी नीतियाँ और योगदान महत्त्वपूर्ण है।

जापान – प्राचीन काल से भारतीय सम्पदा बौद्ध धर्म के माध्यम से जापानी सभ्यता के लिए अग्रदूत और मार्गदर्शक रही है। शायद किसी अन्य देश ने अपनी सीमाओं से परे लोगों के जीवन के तरीके को ढालने के लिए उनके विचारों और कार्यों को इतना प्रभावित नहीं किया है, जितना भारत ने। भारतीय संस्कृति के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राचीनकाल से ही हमारे सांस्कृतिक अस्तित्व का आधार रहे हैं। जापान ने उन सिद्धान्तों के आधार पर अपनी सभ्यता को आकार दिया और एक विकसित राष्ट्र में बदल दिया।

युगों-युगों से चली निरन्तर, संस्कृति हम तक आई है।
करके कठिन साधना पुरखों ने हम तक पहुँचाई है।।
हम कर्तृत्व मिलाकर अपना आगे इसे बढ़ायेंगे।
वर्तमान से हम भविष्य तक, यह संस्कृति ले जायेंगे।।

निवेदन

प्रिय भैया-बहिनों से ...

यह पुस्तक तो आपने पूरी पढ़ ली। पुस्तक केवल पढ़ने और संभाल कर रख लेने के लिए तो नहीं होती आगे विचार करने के लिए यदि हमने उसमें से कुछ नहीं निकाला तो पुस्तक की उपयोगिता क्या हुई? इसलिए, कुछ बातें आपके सोचने एवं करने के लिए ...

यह तो छोटी-सी पुस्तक है। कितना भी बड़ा ग्रन्थ क्यों न हो, उसमें भी विषयवस्तु की सीमा तो रहती ही है। उस पर संस्कृति जैसा व्यापक विषय कुछ पृष्ठों की मर्यादा में कैसे समा सकता है? इसलिए सबसे पहले तो अपने ध्यान में यह आना चाहिए कि यह पुस्तक संस्कृति के कुछ प्रमुख अंगों का परिचय मात्र है, सम्पूर्ण संस्कृति बोध नहीं। कुछ जानकारियाँ एवं तथ्य आपके ध्यान में आ गए, अब उनके विस्तार में जाने का काम तो आपको ही करना है – स्वाध्याय द्वारा, चर्चा द्वारा, चिंतन द्वारा।

दो शब्द प्रयोग में आते हैं – सभ्यता और संस्कृति। प्राय: दोनों को पर्यायवाची समझा जाता है, जबकि दोनों में अनेक अन्तर हैं। सभ्यताएँ बदलती हैं, बनती-बिगड़ती हैं। संस्कृति का आधार स्थायी तथा शाश्वत होता है। सड़क बनाने की एक प्रक्रिया होती है – नाप-जोख की जाती है, निर्माण सामग्री आती है, सरकार या नगर पालिका धन देती है और अभियन्ताओं के मार्गदर्शन-निरीक्षण में श्रमिक सड़क बनाते हैं। इसके विपरीत गाँव में खेतों के बीच से होकर मन्दिर या तालाब तक जाने वाली पगडण्डी कोई बनाता नहीं, चलने वालों के पैरों से स्वयं बन जाती है। सभ्यता सड़क है, संस्कृति पगडण्डी जोकि उसका पालन करने वालों ने स्वयं बना ली है। इसमें सभ्यता का भी अंश होता है, किन्तु पर्व-त्योहार, रीति-रिवाज-परम्पराओं, मान बिन्दुओं-श्रद्धा केन्द्रों के प्रति समान आस्था समाज को एकजुट करती है। गंगा उत्तर भारत में बहती है किन्तु सुदूर दक्षिण भारत ही नहीं बल्कि विदेशों में भी जा बसे भारतीय मूल के समाज के लिए श्रद्धा का केन्द्र है। संस्कृति का आधार भावात्मक एकात्मता है जो हमें एक-दूसरे से जोड़कर रखती है। कविवर सुमित्रानन्दन पंत अपनी कविता 'आस्था' में लिखते हैं – "प्रखर बुद्धि से भले सभ्यता हो नव निर्मित, संस्कृति के निर्माण के लिए हृदय चाहिए।"

प्रसिद्ध साहित्यकार प्रो॰ किशोरीदास वाजपेयी कहते हैं, "संस्कृति संस्कार से बनती है जबकि सभ्यता नागरिकता का रूप है।"

अत: अपने लिए विचार करने का दूसरा विषय है, क्या हम सभ्यता और संस्कृति को अलग-अलग ठीक प्रकार से समझते हैं।

आजकल मंच पर होने वाली प्रस्तुतियों – नृत्य, नाट्य, गायन-वादन, अभिनय को 'सांस्कृतिक कार्यक्रम' कहा जाता है। यदि उनमें अपने देश की संस्कृति की झलक नहीं है तो वे रंगमंचीय प्रस्तुतियाँ मात्र हैं, सांस्कृतिक कार्यक्रम तो नहीं।

वीर सावरकर लिखते हैं, ''विश्व रचना परमात्मा द्वारा सम्पन्न हुई है। संस्कृति मानव प्रकृति द्वारा की गई उसकी अनुकृति मात्र है। संस्कृति का सर्वोत्तम रूप प्रकृति और मानव पर मानव की आत्मा की पूर्ण-विजय प्राप्ति ही है।'' अर्थात् अपनी संस्कृति की मूलभूत विशेषताओं को समझकर और उन्हें जीवन व्यवहार में लाकर हम एक प्रकार से परमात्मा के कार्य का अनुकरण ही कर रहे होते हैं।

देशभर के अनेक विद्वानों ने इस पुस्तक में अत्यन्त परिश्रमपूर्वक जो जानकारी संकलित कर हमारे हाथों में सौंपी है, वह केवल रट लेने और परीक्षा में अच्छे अंक लाने के लिए नहीं है। हम इस सूत्र रूप में प्राप्त जानकारियों के आधार पर इस दिशा में और अधिक खोजें-जानें-समझें-समझायें, तभी इस श्रम की सफलता होगी। ज्ञानदायिनी माता सरस्वती हमें ऐसी सामर्थ्य प्रदान करें, यही प्रार्थना।

– महामंत्री

मीनाक्षीपुरम् मन्दिर
तमिलनाडु

प्रकाशक :

विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान

संस्कृति भवन, सलारपुर रोड, कुरुक्षेत्र-136118 (हरियाणा)

दूरभाष : ०१७४४-२५१९०३, २७०५१५ मोबाइल/व्हाट्सएप्प : ९८१२५२०३०१

sgp@samskritisansthan.org www.samskritisansthan.com vidyabhartikurukshetra vidyabhartisss YouTube vbsss kkr

प्रकाशन वर्ष : विक्रम संवत् २०८१, युगाब्द ५१२६ (सन् 2024 ई॰)